अखिल बंग
महाकवि निराला अभिनन्दन
स्वागत कार्य-समिति



स्वागताध्यक्ष :— आचार्य क्षितिमोहन सेन शास्त्री, शान्तिनिकेतन।

उपस्वागताध्यक्षः—डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या
श्री गांगेय नरोत्तम शास्त्री
श्री मुरलीधरजी शुक्ल

स्वागत-मन्त्री :— श्री राधाकृष्ण नेवटिया
संयुक्त मन्त्री :— श्री राम निवास ढंढारिया
श्री बरुआ

कोषाध्यक्ष— श्री शिवभगवान गोयनका

आय-व्यय परीक्षकः-श्री पुरुषोत्तमदास हलवासिया

सदस्य :—

डा० सत्येन्द्र	श्री बद्रीदास बर्मन
श्री सीताराम सेकसरिया	श्री भंवरमल सिंघी
श्रीमती ज्ञानवती लाठ	श्री लक्ष्मीनारायण शुक्ल
बा० मूलचन्द्र अग्रवाल	पं० परमानन्द शर्मा
श्री वेणीशंकर शर्मा	श्री रेवतीरंजन सिनहा
श्री रघुनाथप्रसाद खेतान	श्री ऋषभदेव पाण्डेय
श्री रामशंकर त्रिपाठी	श्री श्रीलाल सांवलका
श्री लक्ष्मीनिवास झूंझनूवाला	श्री हरिप्रसाद माहेश्वरी
श्री चन्द्रिका प्रसाद शर्मा	श्री [illegible]
श्री रामकुमार [illegible]	

अभि-
...नी।
...नायक द
...अनन्त हों, यह कामना स्वाभाविक है।

हरतालिका, २०१०] —(श्रीमती) महादेवी



2191/53

राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली।

२६ अगस्त ५३।

प्रिय महोदय,

आपका २२, ८, ५३ का लिखा राष्ट्रपति जी के नाम पत्र मिला है। इसके लिए उनकी ओर से धन्यवाद। आपकी संस्था द्वारा महाकवि निराला अभिनन्दन का कार्य प्रशंसनीय है और ऐसे काम की सफलता की कामना करते हैं।

भवदीय,

वाल्मीकि चौधरी

वाल्मीकि चौधरी
राष्ट्रपति के निजी सचिव

मंत्री,
अखिल वंग महाकवि निराला अभिनंदन समिति,
१८५, हरिसन रोड,
कलकत्ता।

संयोगवश कविवर निरालाजीके अभिनन्दनका यह आयोजन ऐसे समय हो रहा है जब कि मैं व्यक्तिगत रूपसे कुछ पारिवारिक दुःख-सुखके भीतर से गुजर रहा हूं। तथापि मैंने इस अर्घ्यदान और श्रद्धा-निवेदनके आयोजनके नेतृत्वके गुरूतर भारको उठाना स्वीकार कर लिया है।

निरालाजी और मैं दोनों एक दूसरेके पूरक हैं : वे हिन्दी भाषी हैं, किन्तु बंगालमें जन्मे और पले-बढ़े हैं एवं बंगाली होनेपर भी मेरी मातृभूमि हिन्दी प्रदेश है। मेरे अध्ययनका क्षेत्र संत-साहित्य रहा है।

पिछली बार प्रयागमें जब मैंने निरालाजीके दर्शन किये, तो मुझे ऐसा अनुभव हुआ, जैसे स्वयं निरालाजी अन्तर और बाहरसे संत ही हैं।

निरालाजी हिन्दी साहित्यके एक अग्रणी सत्य-द्रष्टा हैं। आज चारों ओर विच्छेदका स्वर सुनाई दे रहा है। ऐसे अवसरपर निरालाजी देशकी दो प्रमुख साहित्यधाराओं के बीच सेतुका काम कर रहे हैं। मैं मंगलमयसे प्रार्थना करता हूं कि उनका यह संयोग-साधन अक्षुण्ण रहे। गीताने योगसूत्र स्थापित करनेवालेको योगी कहा है। निरालाजीकी साधना कभी योग-भ्रष्ट न हो, यही मेरी एकान्त कामना है।

(आचार्य) क्षितिमोहन सेन, शास्त्री
स्वागताध्यक्ष,
अ० बं० महाकवि निराला अभिनंदन

शान्तिनिकेतन,
१४-८-५३

धन्यवाद और आभार

आज यह बंगभूमि अपनेको गौरवान्वित अनुभव कर रही है कि कलकत्ता जैसे विशाल नगरके हिन्दी एवं बंगला भाषा-भाषियोंको युग प्रवर्तक क्रान्तिकारी महाकवि "निराला" के स्वागतका सुअवसर प्राप्त हो रहा है। लगभग १० महीने पूर्व श्री बरुआके दिल और दिमागमें उन महाकविके अभिनन्दनकी कल्पना आई, जिन्हें न तो अभिनन्दन और न स्वागतसे ही मतलब है। वह तो स्वयं ही अपनी महिमासे मंडित हैं। इसी कल्पनाको पूर्ति रूप देनेके लिये बरुआजीने निरालाजीके जीवन-चरित्र सम्बन्धी विभिन्न सामग्री एकत्र करनेके लिये बिहार, लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर, बनारस, आगरा आदिका भ्रमण किया। सैकड़ों व्यक्तियोंसे सम्पर्क कायम कर जानकारी प्राप्त की। निरालाजीके जीवनसे सम्बन्धित एक डाक्यूमेंटरी फिल्मका भी आयोजन किया, जिसमें उनके प्रारम्भिक जीवनसे लेकर अब तक की महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय घटनाओंका यथासम्भव समावेश है। इसमें श्रीपुरुषोत्तमदासजी हलवासिया का सहयोग सर्वथा सराहनीय है।

इस अभिनन्दन-ग्रन्थमें हम नेशनल लाइब्रेरीके अध्यक्ष महोदयकी सहृदयताका उल्लेख किये बिना नहीं रह सकते, जिन्होंने निरालाजीका भव्य तैल-चित्र लाइब्रेरी-हालमें टांगनेकी स्वीकृति दी है।

अभिनंदनके अन्तर्गत इस सुअवसर पर संगीत श्यामला एवं अभिनव संस्कृति परिषदकी बहिनोंने निरालाजी एवं श्रीमहादेवीजीके गीतोंपर जिस भाव-नृत्यके सुन्दर आयोजनका प्रयास किया है, यदि वे उसमें सफल हुईं तो निश्चय ही अपनेको कृतकृत्य समझेंगी। साथ ही हम भी अपनेको गौरवान्वित समझेंगे।

स्वागत समितिकी ओरसे हम इस आयोजनको सफल बनानेमें जिन महानुभावों ने स्वागत-समितिका सदस्य बनकर कार्यको अग्रसर किया, उसके लिये हम उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करते हैं। साथ ही हम स्थानीय उन समस्त कार्यकर्त्ताओं, संस्थाओं एवं समागतोंके आभारी हैं, जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर समारोहको पूर्ण सफल बनाया। अन्ततोगत्वा अपने विशेष सहकर्मियों श्री बरुआजी, मुरलीधरजी शुक्ल, पुरुषोत्तमदासजी हलवासिया, रामनिवासजी ढंढारिया, परमानन्दजी शर्मा, हरीप्रसादजी माहेश्वरी, चन्द्रिकाप्रसादजी शर्मा तथा स्थानीय हिन्दी दैनिकपत्र विश्वमित्र, लोकमान्य, सन्मार्ग और मानवको धन्यवाद देते हैं, जिनके सहयोगसे आयोजन सफल रहा।

—स्वागत-मंत्री, स्वागत-समिति।

सम्पादकीय

पहाड़ी वेगसे बहते हुए जब अन्तर्द्वन्द पहाड़ीसे नीचे उतरकर उपजाऊ जमीन पर निर्मल धारामें शान्त और एकात्म भावसे बहने लगते हैं, उस समय व्यक्तिकी आत्मा इस पृथ्वीके रागसे त्यक्त होकर दिव्यता ग्रहण कर लेती है। मनुष्यकी साधनाके कुछ सरल अर्थ हैं, तो यही कि वह दुनियाकी वाचालताके इन्द्रजालको काव्य बना दे और जगतीकी मनुष्यताके रुद्ध स्वरोंको मधुर झंकृति प्रदान कर दे। ज्योतिका विधान भी यही है और मनुष्यके अबोध शिशु-जीवनका विधान भी यही है।

बीसवीं शतीके प्रथम प्रहरमें एक ओर राष्ट्रीयताका तलछट अपनी गर्भावस्थामें निश्चित रूपरङ्ग ग्रहण कर रहा था। इन्हीं स्वर-शक्तिके मुखरित क्षणोंमें, हिन्दी भारतीकी तेजस अभिव्यक्ति नया ओज ग्रहण कर रही थी। जो भी साहित्यकार थे, वे पहले पत्रकार थे, देशके नवोन्मुख जागरण-लहरीके दिशा-उद्घोषक भी पहले थे। प्रातःस्मरणीय श्रीमहावीरप्रसादजी द्विवेदी हिन्दी साहित्यके बृहद् उद्यानको अपने चमत्कारी हाथोंसे संवार रहे थे। उन्हींके जादुई हाथोंने जो एक स्पर्श महिषादलके राजसी वातावरणमें पले एक युवकपर किया तो वह बंगाली संस्कारोंकी दुर्बलताओंके मोह तत्क्षण त्याग बैठा और हिन्दी पत्रकारिताका एक विनम्र सेनानी बन गया। यह युवक था शूर्जोकुमार तिवारी। कलकत्तामें लोगोंने इस कुमारको जरा कर्मठ तपे हुए सेनानी रूपमें देखा और उन्होंने इसे शूर्जोकान्तके नामसे ही जाना-पहचाना।

आज वह शूर्जोकान्त महाकवि निरालाके नामसे भारत-विख्यात् है।

विगत पन्द्रह वर्षोंसे हमारे इस मनीषी-कविके ऐश्वर्य-सिद्ध पौरुषको लेकर निरन्तर एक उच्च स्तरीय चर्चा इस चिन्ताके साथ बढ़ती-फैलती रही है कि आखिर आत्माके इस सर्वोच्च अहंके उन्नायकने इतनी शीघ्रतासे संन्यास क्यों ले लिया?

कलकत्ताके सभी साहित्य-प्रेमी और पत्रकार और साहित्यकार बराबर यह प्रश्न अपने साथ लिये चल रहे थे कि जिन्होंने इस महानगरीके सांस्कृतिक इतिहासमें एक पूरा परिच्छेद लिखा है, अब उचित समय आ गया है, उनका विशाल अभिनन्दन किया जाये। और, जो एक चिन्ता समस्याके रूपमें उनके नामके साथ जुड़ बैठी है, उसका सांस्कृतिक समाधान प्रस्तुत किया जाये। स्वयं महाकविका व्यक्तित्व इतना तपोमय रहा है, कि उनके मनुजका वरदान ही हम फैलाये हुए हाथों ले सकते हैं, उन्हें देनेके लिये हम हर दृष्टिसे अवश हैं। व्यक्तिकी पूजा निश्चित रूपसे सांस्कृतिक

स्तुतिसे कुछ अलग चीज है। व्यक्तिकी तपस्याका समादर हमारी नई सन्ततिको एक सबल दिशा-ज्ञान देनेकी क्षमता रखता है।

आज महाकवि निरालाके अभिनन्दन-क्षणोंमें यह अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करते हुए कलकत्ताके हिन्दी भाषा-भाषियोंके साथ, प्रस्तुत पंक्तियोंका लेखक भी श्रद्धासे नत-मस्तक हो रहा है।

यह अभिनन्दन उस समय हो रहा है, जब कि महाकवि निराला अपने अन्त-र्द्वन्दोंसे विमुक्त, अपने दीर्घजीवनकी नवीनतम उन्नत दिशामें अभियान कर रहे हैं !!

महिषादलके पवित्र दर्शन

महाकवि निरालाका जन्म महिषादल राजबाड़ीके एक कोनेमें अवस्थित एक (बारकनमा) झोंपड़ीमें हुआ था। जन्म समय ही आपकी माताका देहान्त हो गया, तो उसी समय आपको राजबाड़ीके पिछवाड़े एक दूसरी झोंपड़ीमें रखा गया। और इसके बाद आपको मातृविहीन अवस्थामें एक तीसरी झोंपड़ीमें पालन-पोषण दिया गया।

किताबोंमें तो खूब पढ़ा था कि निरालाजी महिषादलमें जन्मे हैं। जब हम महा-कविके जीवनपर एक सांस छः मास खोजकार्यका परिश्रम कर चुके, तो अभिनन्दन कार्यके सहयोगियोंकी आज्ञा शिरोधार्य कर महिषादलकी 'तीर्थयात्रा'के लिये निकले। हम पहले हिन्दीके प्रतिनिधि थे जो कि इस तीर्थयात्राके लिये निकले थे, इसलिये मनकी उमंग यह देखनेमें तल्लीन थी कि महाकविने जिस प्राकृतिक-स्थलीमें जन्म लिया है, वह कितनी गहन हरीतिमा और हरियालीकी सुषमासे परिप्लावित है। हावड़ा स्टेशनसे सुबह पांच बजे चलकर ट्रेन द्वारा हम दस बजेके लगभग पांस-कुड़ा स्टेशन पहुंचे। और बसमें बैठकर दिनके एक बजे महिषादल पहुंचे। बीचमें तामलुक आया, तो जलपान कर लिया था। बर्दमानके आगे चलते ही जो प्राकृतिक सौन्दर्य नेत्रोंके आगेसे एक दीर्घसूत्री वाक्यावलीके समानान्तर गुजरता चला गया, उसका भावानुवाद प्रकट करनेके लिये एक कठोर चिन्तनकी आवश्यकता है। हम तो मन्त्र-मुग्ध, विभोर और एकटक सिर्फ उस गहन हरीतिमाको देख रहे थे। चावलों-के खेत, पाटके खेत, दूर तक पंक्तिबद्ध और दायरेबद्ध ताड़वृक्ष व नारियलके गगन-चुंबी कम्पित रेखाकार स्तंभ! सघन कुञ्ज और उनके बीच सरल ग्रामीणोंके बंगाली झोंपड़े। हर वस्तु कलासे वेष्ठित, हर पृष्ठभूमि सलज्जा हरियालीके आंचलसे जीवन्त। प्रकृतिका स्नेह दूर दिशातक इस तरह हिलोरें लेता हुआ कि कहीं सूखी जमीन दिखाई नहीं दे। ग्रीष्मभी जिसके सिरपर हावी होकर स्निग्ध होचुकी थी। शस्य श्यामला शब्द जहां खिले गुलाबसा पुष्पित हो रहा हो। ग्रामीण वधुओंकी कार्य-

तत्परता खेतोंमें मानवी-श्रमको दिगंत बना रही थी। किं बहुना, विश्वकवि टैगोर की आत्मा जहां स्मित भावसे परिशान्त विचरण कर रही थी।

कितना सौभाग्य कि महाकविका जन्म राजघरानेमें न होकर राजबाड़ीसे १०० गज दूर, भारत राष्ट्रकी प्रतीकिनी झोंपड़ीमें हुआ! आज यह झोंपड़ी नहीं है। और यह स्थान खाली पड़ा हुआ है। जिन अन्य दो झोंपड़ियोंमें महाकविने जीवन की पहली सासें ली हैं, वे भी अब नहीं हैं।

हम बंगाल सरकारसे और देशके सभी साहित्यकारोंसे आग्रह करते हैं कि वह इस रिक्त स्थानपर महाकविके जन्मकी स्मृतिमें एक ज्ञान-मन्दिरकी स्थापना करायें।

प्रारम्भिक शिक्षाका स्कूल

बंगला भाषाके माध्यमसे निरालाजीका प्रारम्भिक शिक्षण महिषादल राज्य हाई स्कूलमें हुआ। निकटवर्ती नदीसे निःसृत एक बड़ी नहर यहांकी राज्यबाड़ीको कस्बे की बस्तीसे विभक्त करती है। इसी नहरके तटपर यह स्कूल, राज्यबाड़ीकी शोभनीय चहारदीवारीसे बाहर खड़ा हुआ है। स्थानके अनुरूप छोटीसी बिल्डिंग। किसे ज्ञात था कि यहांका एक किशोर सुन्दर बालक एक दिन राष्ट्रभाषाके माध्यमसे जनता का प्रतिनिधित्व करता हुआ सांस्कृतिक सूर्यके जागरणका अग्रणी प्रहरी बन जायेगा।

इसके बाद अतृप्त नेत्र देखा वह टिन-शेड, जहां कभी नाट्यशाला थी और हमारे किशोर नायक जहांपर नाटक खेला करते थे। इसके बाद राज्यबाड़ीका वह स्थान देखा, जहांपर उन्होंने जीवनका पहला होश सम्हालनेके उपरान्त राज्यकी नौकरीकी। स्टोर-विभागमें एक साधारण क्लर्क! फिर वह राज्य-मन्दिर देखा, जहांपर हमारे नायक प्रायः बैठते थे और रात-रात जागरण किया करते थे। यही वह भाग्यशाली देवस्थली है, जिसने महाकविमें प्रारम्भिक धार्मिक संस्कार घनिष्टतासे रोपे थे।

ये सब स्थान देखे और कुछ बूढ़े लोगोंसे सूरजोकुमारकी जानकारी ली। लौटे तो यही अनुभूति हृदयमें रह-रहकर ध्वनि करने लगी कि महिषादलमें उगा हुआ यह ताड़वृक्ष संयुक्त प्रान्तकी गंगास्थलीमें अवस्थित होकर वृहद् बरगदका वृक्ष किस तरह बन गया है? अरे, किस तरह बन गया है···

शीघ्र ही फिर दुबारा महिषादल जानेका सौभाग्य मिला। इसबार निरालाजीके जीवनसे सम्बन्धित तैयारकी जानेवाली संक्षिप्त डाक्यूमेंटरी फिल्मके कामसे। इस प्रवासमें हम श्री पुरुषोत्तमदासजी हलवासियाके साथ गये थे। हलवासियाजीने उक्त सभी स्थानोंकी फिल्म उतारी और यहीं पर हमें फिल्म-कलासे दीक्षित किया! श्री हलवासियाजी उन साहित्यप्रेमियोंमेंसे हैं, जिनके सांस्कृतिक दृष्टिकोण बड़े पैने हैं

और जिन्होंने निरालाजीके जीवन-क्रमका एक विस्मरणीय तथ्य हमें ठीक मौके पर देकर इस अभिनन्दन-कार्यको आगे बढ़ाया था।

मंतव्य और उपक्रम

गत वर्ष, १७ नवम्बरको सबसे पहले हम अपना अधकच्चा-अधपक्का स्वप्न लेकर महामान्या महादेवीजीके पास लेकर गये थे। हमने कहा कि निरालाजीके स्वास्थ्य-लाभार्थ कुछ धनराशि और एक अभिनन्दन-ग्रंथ और एक फिल्म हम बनानेका इरादा रखते हैं। लेकिन आपकी शुभ स्वीकृति चाहिये कि आप इस अभिनन्दन-समारोहकी अध्यक्षा रहेंगी। देवीजीने तुरन्त ही कहा, "यह तो सिर्फ कलकत्ता जाने भरकी बात है। यदि कोई मुझसे कहे कि नरक जाकर निरालाजीके लिये रुपया लाना है, तो मैं वहां भी जाऊंगी !!".

इतना आशीर्वाद भरा आश्वासन काफी था और आज हम यह स्वीकार करते हैं कि महादेवीजीके इसी आशीर्वादके कारण यह दुःसाध्य कार्य सरल सुगमतासे हल भी हो गया।

प्रस्तुत अभिनन्दन-ग्रन्थ एक विनम्र प्रयास-भर है। महाकविके ५८ वर्षोंका जीवन-चरित्र इस अल्प-परिमाण ग्रंथमें मात्र सूचनात्मक तौर पर ही सम्भव हो सकता था! कलकत्ता, पटना, बनारस, इलाहाबाद, लखनऊ, आगरा और दिल्ली तथा गाजियाबादमें जिन लोकप्रिय साहित्यकारोंसे हमने भेंट की, उन्होंने भी हमें इस ग्रंथमें मात्र संस्मरण देनेका सुझाव दिया था। फिर भी पाठक अनुभव करेंगे कि इस ग्रंथमें उनके साहित्यको अत्यधिक गौरव मिला है।

इलाहाबादकी 'परिमल' संस्था और उसके प्राण श्री धर्मवीर भारतीका हम किन शब्दोंमें आभार प्रकट करें, जिन्होंने निरालाजीके इस काममें अपना अकल्पनीय सहयोग दिया है!

इसमें प्रकाशित होने वाले चित्रोंकी बात भी कह दी जाये। कानपुरके यश-मंडित चित्रा स्टूडियोने, श्री हरिमोहनदासजी टंडन (प्रयाग) ने, श्री गणेशप्रसादजी अर्गलने और डा० रामविलास शर्माने, साथ ही श्रीमती चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा'ने जो चित्र हमें दिये हैं, उनके लिये हम आभार प्रकट करते हैं। कुछ चित्र श्रीवाचस्पतिजी पाठकसे मिले हैं। तिरंगा चित्र तो लीडर प्रेसके सौजन्यसे ही प्राप्त हुआ है। श्री वाचस्पतिजी पाठककी मार्फत हम अपना धन्यवाद आर्टिस्ट इस्माइल साहबको दे रहे हैं, जिनका कलात्मक चित्र इस ग्रन्थके कवरकी शोभा बढ़ा रहा है।

प्रस्तुत ग्रन्थके सभी संस्मरण लेखकोंको कोटिशः धन्यवाद। नियमित समय पर अपनी रचनायें देकर जिन्होंने इस वृहद् अनुष्ठानको इतिहासिक महत्व दिया है।

—संपादक।

महाकवि निराला : एक जीवनी
संक्षिप्त डाक्यूमेंटरी फिल्म

डाक्यूमेंटरी फिल्म चलचित्र विज्ञानकी एक सफल कला है, जिसके द्वारा दर्शकों को अत्यल्प समयमें अधिकसे अधिक सूचनात्मक समाचारकी पूर्ण सामग्री दिखला दी जाती है। इस समय देशमें सिर्फ भारत सरकारका फिल्म-डिवीजन ही ऐसा विभाग है, जो विभिन्न प्रान्तोंकी समस्याओंपर महत्वपूर्ण डाक्यूमेंटरी फिल्में प्रस्तुत करता है। लेकिन इस विभागकी अपनी विवशतायें हैं और देशकी अनेक समस्यायें ऐसी हैं, जिनका चित्रीकरण उचित सहयोगके अभावमें पूर्ण नहीं हो पा रहा है।

महाकवि श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के दीर्घ किन्तु नाटकीय जीवन पर जब फिल्म बनानेका प्रश्न उपस्थित हुआ तो मुझे भी और मेरे सहयोगियोंको भी यह सरल काम नहीं लगा कि गैर-सरकारी स्तरपर इसे पूरे किया जा सकता है। किन्तु इस कामको हमने प्रयोगात्मक दृष्टिकोणसे शुरू कर ही तो दिया।

फिर भी सन्देह बना ही रहा। महाकविके संघर्षमय जीवनको चित्रपटपर पूर्ण रूपेण चित्रित करना अत्यन्त ही दुस्साहस पूर्ण काम था। दुष्कर तो यह हर तरह था। कार्यके अन्ततक यही आशंका हमारे कार्यकी सभी दुर्बलताओंकी ओर बराबर उंगली उठाये रही है।

भारतीय फिल्म इतिहासमें यह पहला ही अवसर है कि जब राष्ट्रभाषाके एक जीवित साहित्य-स्रष्टाका जीवन चित्रपटपर उतारनेका प्रयास कुछ साहित्यिक मित्रों और सहयोगियोंको लेकर आंशिक रूपमें संयोजित हो पाया है।

हम यह अनुभव करते हैं कि यदि समयकी कुछ लम्बी गुंजाइश रहती तो यह चित्र पूरे ढाई घण्टेका तैयार किया जा सकता था। फिरभी अल्पसमय और सीमित साधनोंको लेकर यह विनम्र अल्पप्रयास साहित्य-जगत्में प्रस्तुत करते हुए हम आशान्वित हैं कि इस क्रमको आगे बढ़ानेमें हमारा मार्ग निरन्तर प्रशस्त होता चलेगा।

फिल्म उतारनेका सौजन्य हमें कलकत्तामें मेसर्स एरहैप्पी स्टूडियो, लखनऊमें मैसर्स सी० मल्ल एण्ड कम्पनी और इलाहाबादमें 'परिमल' के सदस्य श्री हरिमोहन दासजी टण्डनसे मिला है। इनके प्रति हम आभार प्रकट करते हैं।

यह फिल्म ८ मि०मि०पर उतारी गई है। इस परीक्षणसे जो अमूल्य अनुभव हमें हुए हैं, उसके आधारपर हम आगामी कार्यक्रम (किसी अन्य लोकप्रिय हिन्दी साहित्यकारके जीवनपर फिल्म बनानेका काम) १६ मि०मि०पर करनेका विचार रखते हैं।

—पुरुषोत्तमदास हलवासिया (संपादक)

श्रीराम

प्रिय महोदय,

श्री निरालाजीके लिए आप लोग जो जतन कर रहे हैं, उसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। अपने मान्य साहित्यकारोंके प्रति यह सहानुभूति सराहने योग्य इसका कहना है, ही क्या ?

चिरगांव — भवदीय,

१४-९-२००९ — मैथिलीशरण गुप्त

यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि हिन्दीके यशस्वी तथा क्रान्तिकारी कवि श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का सार्वजनिक अभिनन्दन विभिन्न संस्थाओंकी ओर से किया जा रहा है। हिन्दीके आधुनिक कविता-क्षेत्रमें निराला अग्रणी और युग-प्रवर्तक कवि रहे हैं। ऐसे कवि किसी भाषाको बड़े सौभाग्यसे प्राप्त होते हैं। निराला सर्वतोमुखी प्रतिभाशाली कवि हैं। उनको पाकर हिन्दी धन्य हुई है। हिन्दी-सेवाके लिये निराला युग-युग स्वस्थ और प्रसन्न जीवन यापन करें। यही ईश्वरसे प्रार्थना है।

—लक्ष्मीनारायण सुधांशु

कवि युगका प्रतिनिधि होता है। उसकी वाणी युग-वाणी कहलाती है। समाज को वांछित दिशामें उन्मुख करनेमें कविका प्रभाव सन्देहसे परे है।

'निरालाजी' उसी प्रकारके कवि हैं। उनको कवितामें प्रभाव है, ओज है और और अपने समयका प्रतिनिधित्व भी। हम अभी इस योग्य नहीं हो सके हैं कि अपनी इस प्रकार की विभूतियोंका उचित सम्मान कर सकें। फिर भी पुरानी परम्पराके अनुरूप पुष्पं फलं तोयंको भांति 'अभिनन्दन ग्रन्थ' समर्पण कर अपनी श्रद्धाको मूर्त रूप देते हैं। मैं निरालाजीकी चिरायु की कामना करते हुए अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

—मोहनलाल गौतम

(स्वास्थ्य-मन्त्री, संयुक्त प्रदेश)

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि कविवर श्रीनिरालाजीके अभिनन्दनका एक विशाल आयोजन किया जा रहा है। इस उत्सवके लिये हार्दिक शुभ कामनायें भेजता हूं।

—श्रीमन्नारायण अग्रवाल

(मन्त्री, अ० भा० कांग्रेस कमिटी, नई दिल्ली)

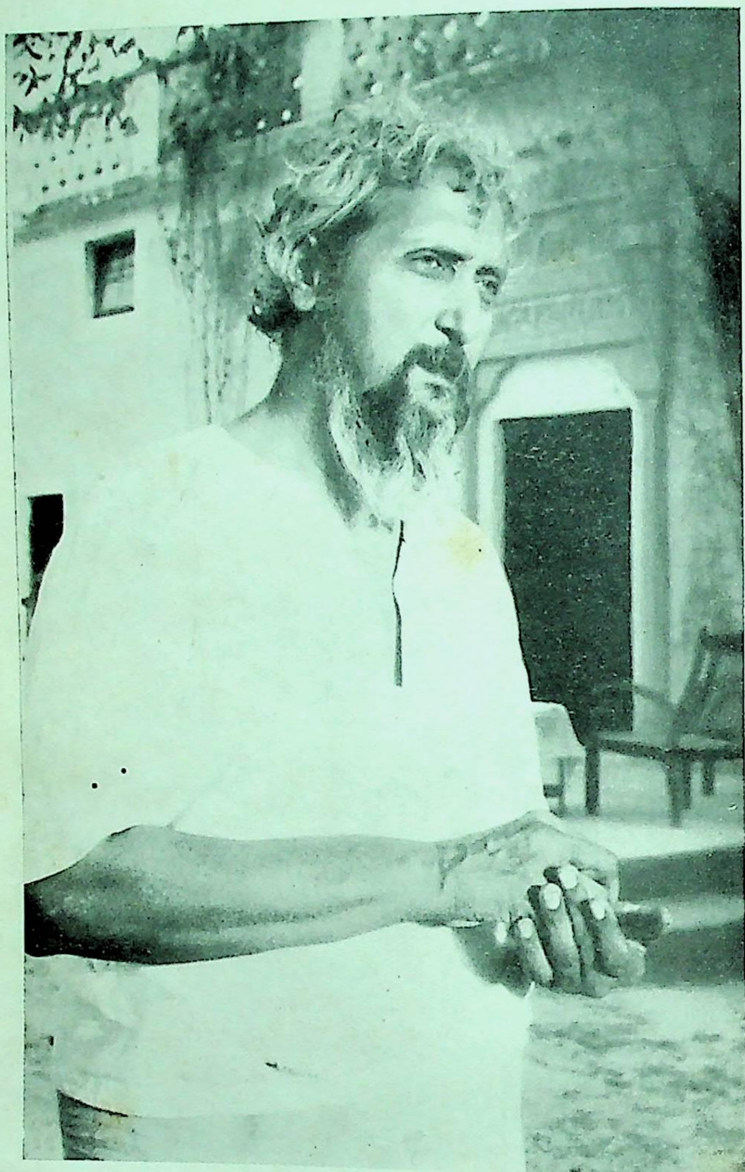
अनुक्रमणिका

संस्मरण-लेखकोंका क्रम



[चित्र : श्री हरिमोहनदासजी टंडन

सूफ़ी निरालाके नेत्र मस्तकमें ऐसे ही दीप्त होते हैं, जैसे किसी दूरन्त बीहड़ बनकी यात्रा करके केहरि अपनी गुफ़ाके द्वारपर सो जाये और उसके ज्योतित नेत्र उन्मीलित रह जायं……



[चित्र : ८ मई '५२

सात्विक-उत्कर्ष के व्रती

एक दीर्घ स्मृति

पत्रकार-प्रवर पं० झाबरमल शर्मा

सन १९२१ के आसपासकी बात होगी। 'कलकत्ता समाचार" कार्यालयमें एक दिन मध्यान्होत्तर एक भद्र सज्जन, जिनका वेष-विन्यास बंगाली सांचेमें ढला हुआ था, पहुंचे। शिष्टाचारके साधारण नियमानुसार परस्परमें अभिवादनका आदान-प्रदान होनेपर वे कुर्सीपर बैठ गये और 'सूर्यकान्त त्रिपाठी' कहकर अपना परिचय दिया। और रामकृष्ण मिशनवालोंके मासिक पत्र 'समन्वय' से उन्होंने अपना सम्बन्ध बताया। उसी दिन पहली बार उनकी रचित एक कविता उन्हींके मुखसे सुननेका हमने अपनी मित्र मण्डलीके साथ आनन्द-लाभ किया था। उनके स्वरमें मधुरता थी और सुनानेका ढंग भी। संगीतमें दखल रखनेका प्रमाण भी। परन्तु उनकी कवितामें कविता-रचनाके नियमोंकी अवहेलना देखी गयी। कविताका जोड़-तोड़ भी नया, अनघड़-सा, अनन्वित-सा, मालूम दिया। कानोंको वैसो कविता सुननेका अभ्यास ही नहीं था। इसलिये कवि और कविताके प्रति उस समय कोई आकर्षण नहीं हुआ। इसके बाद सन १९२३ में महादेवप्रसाद सेठने अपनी पसन्द और अभिरुचिके मित्रोंको साथ लेकर अपना मतवाला-मन्डल बनाया और उसीके तत्वावधानमें "मतवाला" नामका साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुआ। "मतवाला" मन्डलमें श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी सम्मिलित होचुके थे। आरम्भमें उसीके द्वारा निरालाजीका नाम हिन्दी साहित्य क्षेत्रमें विशेष रूपसे सामने आया। वस्तुतः निरालाजीके नामको परिगणनीय बनानेमें उनकी प्रखर प्रतिभाही हेतुभूत हुई। यद्यपि परिस्थितियां आरम्भसे ही उनके विपरीत रहीं। हिन्दी कविताका निश्चित् प्रशस्त पथ छोड़कर वे अपनी न्यारी पगडंडीपर अग्रसर हुए और अपने 'निराला' उपनामकी चरितार्थता सिद्ध की अपनी प्रतिभाके बलपर ही, जो जन्मजात कही जा सकती है। उन्होंने अपने "छायावाद" को आगे बढ़ाया। हिन्दी साहित्य जगतमें "मुक्त छन्द" के प्रवर्तक-रूप में निरालाजीका नाम स्मरणीय रहेगा। वे हिन्दीके "मस्तमौला" कवि हैं। उनकी त्यागशीलताकी बातें भी उनके सम्पर्कमें रहनेवालोंसे खूब सुनी जाती हैं। उनको कभी कुछ मिल जाता है, तो उसे दे डालनेमें वे आनन्दानुभव करते हैं।

आतिथ्य करनेमें भी वे एक ही हैं। उन्होंने पद्य और गद्य दोनोंमें ही रचनाएं करके हिन्दी साहित्यकी श्रीवृद्धिमें सहयोग प्रदान किया है, यह उनके यावच्छन्द विचारोंसे सहमत न होनेवालोंको भी मानना पड़ेगा।

इस समय उनका स्वास्थ्य दुर्बलताकी पराकाष्ठाको पहुंच कर चिन्ताका विषय बन चुका है। इस दिशामें श्रीनिरालाजीके जीवनपर खोज-कार्य करनेका जो आयोजन कलकत्तामें हो रहा है; उसकी मैं सराहना करता हूं और साथ ही सफलताकी कामना।

निरालाजीके साथ मेरा सम्पर्क

डा० गुलाब राय एम० ए०

छतरपुर राज्यकी सेवामें वैयक्तिक नौकरीकी विधि-निषेधात्मक पाबन्दियां, और कर्तव्याकर्तव्यकी झंझटें और परेशानियां तथा राजनीतिक चक्रव्यूहोंकी उलझनें जो जो वास्तविक और काल्पनिक रूप धारण कर सकती हैं उन सबकी दुर्वह भयङ्करता मेरे सामने रहते हुए भी उस निकृष्ट चाकरी-वृत्तिका एक सुखद पक्ष भी था—वह था, 'काव्य-शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्' का सुरम्य वातावरण।

स्वर्गीय महाराजा राजर्षि सर विश्वनाथसिंह जू देव विद्याव्यसनी थे और उनको बड़े-बड़े विद्वानों, लेखकों और कलाकारोंको आमन्त्रित करनेकी एक अदम्य लालसा सी रहती थी। उनकी इस लालसा द्वारा मेरी भी ज्ञान-पिपासा शान्त करनेके लिए थोड़ी-बहुत मात्रामें स्वातिसुधाकी वर्षा हो ही जाती थी। मुझमें चाहे सीपकी-सी पात्रता न हो, किन्तु भैंसकी-सी बीनको सानी समझनेवाली अरसिकता भी न थी। मेरी जिज्ञासाएं ही नहीं शान्त होतीं, वरन् मेरा मानसिक धरातल कुछ ऊंचा होता जाता था। पूज्यपाद गोस्वामी दामोदरलालजी सार्वभौम, डाक्टर राधाकृष्णन, महामहोपाध्याय डा० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा, डा० दिनेशचन्द्र सेन, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, ओरियल स्टीन, राखालदास वंद्योपाध्याय, ई० एम० फोस्टर प्रभृति विद्वानोंके सम्पर्कमें आनेका सौभाग्य स्वर्गीय महाराजकी कृपासे ही हुआ।

गौड़िया सम्प्रदायमें दीक्षित होनेके कारण महाराज बंगाली वैष्णव काव्यमें रुचि रखते थे। वे बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे चण्डीदासजीकी पदावली सुनते थे और वैष्णव-कवियोंके किये हुए नायिका-भेदका धार्मिक भावसे रसास्वादन करते थे। वे चण्डीदासजीके पदोंका हिन्दी अनुवाद चाहते थे। मैंने उन्हें बतलाया कि तत्कालीन हिन्दी कवियोंमें चण्डीदासजीका सबसे अच्छा ज्ञान श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" को है। यद्यपि वे व्रजभाषामें अनुवाद न कर सकेंगे, तथापि उनकी खड़ीबोली कविता भी पर्याप्त सरस और माधुर्यपूर्ण है। उसमें गेय गुण भी प्रचुरमात्रामें रहता है।

महाराजने निरालाजीको आमंत्रित करनेकी आज्ञा दे दी। मुझे भी एक प्रसिद्ध छायावादी कविसे निकट परिचय प्राप्त कर लेनेकी निजी लालसा थी। उस लालसाने मेरी स्वाभाविक असावधानीको जो प्रायः अपूर्ण या गलत पता लिखनेका रूप धारण कर लेती थी, नियंत्रणमें रखा। भाषा भी एक कविके स्वाभिमानकी रक्षा करनेवाली लिखी। वह पत्र डाकखानेको सौंपकर मैं निश्चिन्त हो गया। मैं डाकखानेकी ईमानदारीमें विश्वास करता हूं। यदि पत्र विधिवत् डाल दिया जाय तो कालान्तरमें कर्मफलकी भांति उसका परिणाम अवश्य सामने आता है। निरालाजीको लिखे हुए पत्रके सम्बन्धमें यही बात हुई। यद्यपि मैं निरालाजीके निराले अक्खड़पनकी बातें सुन चुका था, तथापि मुझे अपनी विनय-शीलतापर विश्वास था और उस विश्वासने मुझे निश्चिन्त बना दिया था।

मुझे निरालाजीको शवरीकीसी 'भ्रू-पर-पानि' प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। एक दिन प्रायः ११ बजे मैं अपने नीचेकी बैठकमें, जिसको शाही भाषामें 'दीवानेआम' कहा जा सकता है, (यद्यपि मैं आम और खासमें कोई विशेष अन्तर नहीं रखता) बिना किसी विधि-विधानके अर्द्धनिद्रित अवस्थामें लेटा हुआ विश्रामका सुखानुभव कर रहा था, क्योंकि मेरी राजकीय कार्यवेला प्रातःकालके चार बजे प्रारम्भ हो जाती थी। इतनेमें एक कुछ अस्फुट पदध्वनि सुनाई दी। मैं वकोध्यानी तो नहीं, स्वान-निद्रा अवश्य हूं (विद्यार्थीके गुणोंमें स्वल्पाहारी, गृहत्यागी, स्वान-निद्रा, वकोध्यानी और काक-चेष्टा बतलाये गये हैं) और काकचेष्टा भी नहीं हूं। मैं जाग गया और मेरे सामने एक प्रलम्बकाय और तदनुरूप प्रलम्ब-प्रायः केशवाले छायावादी आकृतिके कुर्त्ता-धोती और चप्पलधारी सज्जन दिखाई दिये। मेघदूतके विरही यक्षकी मैंने तस्वीर देखी थी। कुछ उसी आकार-प्रकारको सार्थक करनेवाले मेरे अतिथि-देव खड़े थे। वे वास्तवमें अतिथि थे, क्योंकि उनके आनेकी कोई तिथि निश्चिन्त नहीं थी। वे ऐसे ही आये थे, जैसे कर्मोंके शुभाशुभ फल बिना सूचना दिये उपस्थित हो जाते हैं। प्रकृतस्थ होतेही मुझे यह अनुमान करनेमें देर न लगी कि जो व्यक्ति मेरे सम्मुखस्थ हैं वे साक्षात् निरालाजी ही हैं। नमस्कार-प्रणाम और कुशल-प्रश्न विनिमयके अनन्तर मैंने भोजनादि की चर्चा चलाई। मेरी जिज्ञासाके फलस्वरूप जब उन्होंने कुछ-कुछ दबी जबानसे और कुछ असमंजस-पूर्ण भाषामें, जिसके वे अभ्यस्त नहीं प्रतीत होते थे, कान्यकुब्जोंके स्वयंपाकी-धर्मकी घोषणा की, तब मैंने बिना किसी विशेष आग्रहके (क्योंकि यदि उस समय तक मैंने उनकी "सुकुलकी बीबी"

वाली पुस्तिका पढ़ ली होती तो आग्रह भी कर देता) अंगीठी-कोले तथा दाल-चावलका प्रबन्ध कर दिया ।

महाराजके दरबारमें निरालाजी बुलाये गये । साक्षात्कार हुआ और निरालाजीने चण्डीदासजीकी पदावलीके हिन्दी अनुवादका भार अपने ऊपर लेना स्वीकार कर लिया । दूसरे दिन पदावलीके खड़ी बोली अनुवादका एक नमूना सुनाया गया । शिष्टाचार वश निरालाजीने एक छन्द महाराजकी प्रशस्तिका भी सुनाया । किन्तु मुझे विश्वास है कि सरस्वतीजीको सिर धुनकर पछताना नहीं पड़ा होगा । इस प्रशस्तिकी भूमिकामें चण्डीदासके अनुवादसे महाराजका मन भरा नहीं । क्योंकि उनके कान खड़ी बोलीके माधुर्यके लिये अभ्यस्त नहीं थे । कृष्ण-काव्यका स्वाभाविक माधुर्य व्रजभाषामें ही उतर सकता है । महाराजने फिर मिलनेको कहा, किन्तु दूसरी भेंटसे पहले निरालाजी ज्वरग्रस्त हो गये ।

इस अन्तरमें एक रोज पण्डित (तब वे शायद रायबहादुर न थे) शुकदेव विहारी मिश्रजीके यहाँ भी निरालाजीका कविता पाठ हुआ । मिश्रजी खड़ीबोलीकी विचारधारासे, पंतजीकी प्रारम्भिक कृतियों द्वारा, जो उनके पास मंगलाप्रसाद पुरस्कारके लिए निर्णयार्थ आई थीं, परिचित हो चुके थे । वे इस मामलेमें बड़े उदार थे । निरालाजीकी "जूही की कली", "तुम और मैं" और "जमुना के प्रति" कविताओंसे बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने खेद प्रकट किया कि उनकी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है, नहीं तो वे मंगलाप्रसाद पुरस्कारके अधिकारी थे !*

बीमार होनेसे पूर्व निरालाजी एक दिन मेरे खेत पर गये । यह खेती कुछ तो मैंने एक खर्चीले परन्तु निरापद व्यसनके रूपमें की थी, और "कृषि गोरक्ष वाणिज्यं वैश्य धर्म स्वभावजम्" में बतलाये हुए स्वधर्मके पालनके लिए की थी । उस समय वहां खानेको तो कुछ अधिक न था, शायद कुछ गाजरें थीं, किन्तु उन दिनों न तो उनका विटामिन-मूल्य आंका गया था और न उसका राष्ट्रीय महत्व निखारमें आया था । तब भी उनकी कन्द और मूल होने की आर्ष पूतता वर्तमान थी । वे ही निरालाजीको भेंट की गईं । मालूम नहीं, उन्होंने शवरीके बेरोंके आस्वादके साथ खाया अथवा और किसी भावसे, उनको यज्ञीयवलिकी सुगति अवश्य मिल गई

---

* आज तक निरालाजी की कितनी पुस्तकें प्रकाशित नहीं हो चुकी हैं, लेकिन मंगलाप्रसाद पुरस्कार की आत्मा कहां अपने को इस सौभाग्य से गौरवान्वित कर पायी है कि वह किसी भी वर्ष निरालाजी के साहित्यको विजयमाला पहना देती !

—सम्पादक ।

थी। खेतमें सरसों और सूलीके नील, श्वेत, पीत पुष्प प्रचुर मात्रामें खिले हुए, गाजरोंकी जठराग्नि-तुष्टिकी अपेक्षा नेत्रतुष्टि कर रहे थे। कविका प्रकृति-प्रेमी हृदय उत्फुल्ल हो उठा और उन्होंने बड़े कवित्वपूर्ण शब्दोंमें कहा, "बाबूजी, यह तो आपने दिनमें ही सजीव आतिशबाजीका आयोजन कर रखा है।" मैंने भी केवल इतनाही उत्तर देकर कि "आपके स्वागतमें!" मौन धारण कर लिया। इस आतिथ्य-सत्कारमें मेरे साहित्यिक सहायक श्रीरामनारायणजी 'किसान बालक' मेरा हाथ बँटाते थे। वे कभी-कभी भांग-ठण्डाईका भी प्रबन्ध कर देते थे।

इसके पश्चात् निरालाजी ज्वरग्रस्त हो गये। डाक्टरने टाइफाइड बतलाया। मेरे उत्तरदायित्वका भार बहुत बढ़ गया। मैंने तथा मेरी स्नेहमयी माताजीने उनकी सुश्रूषाका भार बड़ी सावधानीसे निबाहा। निरालाजीने अच्छे होनेपर पूरा सहयोग दिया। डाक्टर बंगाली थे। उनका नाम था त्रिदिवदास भट्टाचार्य। वे निरक्षर भट्टाचार्य न थे, वरन् अपने कार्यमें बड़े दक्ष थे। निरालाजीके विशुद्ध बंगला-उच्चारण से वे बड़े प्रसन्न थे। उन्होंने भी बड़े मनोयोगसे औषदादिका उपचार किया। निरालाजीने एकबार उन २१ दिनोंके सम्बन्धमें लखनऊकी 'सुधा' में लिखनेकी कृपा की थी। किन्तु मुझे खेद है कि मैं कविके इस कृतज्ञता-प्रकाशनको सुरक्षित न रख सका।

उसके बाद मैंने एक बार आगरेके कवि-सम्मेलनमें निरालाजीको आमंत्रित किया था। उन्होंने सभापतिका आसन ग्रहण किया था। किन्तु उसमें विद्यार्थियोंकी अशिष्टताके कारण उनका उग्र रूप भी देखा। किन्तु वह अधिक उग्र न होने पाया।

फैजाबादके साहित्य-सम्मेलनमें उन्होंने छायावादी कविताकी उपयोगिताको कुछ-कुछ वीर-गाथाकालकी ओजमयी शैलीमें प्रमाणित किया था। वहीं मैंने उनसे 'शेरसे घास खानेकी विवशताकी बात' सुनी थी। किन्तु 'रामकी शक्ति-पूजा' लिखनेवालेको वैष्णव बनाना मेरे युक्तिबलसे बाहरकी बात थी। निरालाजी एक बार और, आगरे मेरे मकानपर पधारे थे। किन्तु उस रोज चायका समय देकर 'डिनर' के समय पधारे। और चायके विज्ञापनवालोंकी 'एनी टाइम इज टी टाइम' की उक्तिको सार्थक किया।

कविताके क्षेत्रमें उनका प्रतिद्वन्दी नहीं हूं। जीवनकी अव्यवस्थामें उनका प्रतिद्वन्दी कहा जा सकता हूं, दो-एक लोगोंका ऐसा ख्याल है। किन्तु इस विषयमें भी मैं उनके आगे नत मस्तक हो अपनी हार सहर्ष स्वीकार कर लेता हूं। विशेषकर तबसे जबसे, मैंने उनके हाथीखाना भूसामंडीवाले मकानकी अव्यवस्था देखी थी। यह हमारे देशका बड़ा दुर्भाग्य है कि ऐसे प्रतिभाशाली कवियोंको ऐसी अव्यवस्थामें रहने दिया जाता है।

निरालाजीमें प्रतिभा है—सूर्यकी-सी प्रखर प्रतिभा। उस प्रतिभाकी उनको पूर्ण चेतना है, उसका उन्होंने बड़ी विषयगतताके साथ अध्ययन भी किया है। यदि आप उनसे उनकी कलाके सम्बन्धमें बात करें तो कविताओंका विधान समझानेमें एक दो घंटेतक वे आपकी उंगलियोंका पीछा न छोड़ेंगे। उनकी प्रतिभा मकड़ीके जालेकी-सी नहीं है। उसमें गहरा पाण्डित्य है। उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि बड़ी सबल और दृढ़ है। उनके हृदयमें अपने ही प्रति स्वाभिमानकी भावना नहीं है, वरन् अपनी भाषा और देशके प्रति भी गौरव-भावना बढ़ी हुई है। अपनी बातके कहने का उनमें अपूर्व साहस है। फिर भी उनमें कुछ ग्रन्थियाँ गहरा घर कर गई हैं। उनको मान मिला है, किन्तु उचित मात्रामें नहीं। उस मानके लिए जो व्यवस्थापूर्ण आडम्बर अपेक्षित है, उसका उनमें अभाव है। दुनिया धूलभरे रत्नोंका मूल्य करना नहीं सीखी है। यह हमारे कलाकारोंका दोष नहीं है। निरालाजीमें कवित्वके अपूर्व गुण हैं, किन्तु उनको उचित गुणग्राहक नहीं मिले हैं। 'गुण ना हिरानो गुण ग्राहक हिरानो' है। समाजने आडम्बरशून्य प्रतिभाकी उपेक्षा की, तो निरालाजीने आडम्बर की नितान्त अवहेलना कर समाजका तिरस्कार किया! व्यक्ति और समाजके सामञ्जस्य की आवश्यकता है।

निरालाजीकी दानशीलता

सम्पादकाचार्य श्री अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी

निरालाजीसे हमारा सम्पर्क कमी नहीं हुआ। परन्तु उनकी कवितासे अधिक हम उनकी उदारताके कायल हैं। युधिष्ठिरके यज्ञकी प्रशंसा सुनकर जन्तु-विशेष यज्ञ भूमि पर इस अभिप्रायसे लोटने आया था कि उसका आधा शरीर ब्राह्मण के सक्तुयज्ञमें लोटनेके कारण सोनेका हो गया था और इस यज्ञमें लोटनेसे शेष आधा भी सोनेका हो जायगा। पर नहीं हुआ। इस पर उसने ब्राह्मणके सक्तु-यज्ञकी महिमा बखानी थी। निरालाजीकी उदारता उस ब्राह्मणके सक्तुयज्ञसे तुलना की जा सकती है। जिनके पास हो, यदि वे अपनी सम्पत्तिका अंश दे डालें, तो कोई बड़ी बात नहीं है; पर जो सर्वस्व देकर कंगाल बने रहें, उन्हींकी उदारता और दानशीलता है।

श्री निरालाजी : कुछ संस्मरण

पं० श्रीराम शर्मा

(सम्पादक, विशाल भारत)

बंधुवर निरालाजी (पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला') आधुनिक हिन्दी-साहित्यमें अपना विशेष स्थान रखते हैं। स्वभावसे अक्खड़ और फक्खड़, शरीरसे विशाल और स्वस्थ, धुनके पक्के, पार्टी बाजीसे दूर, सहानुभूति और स्नेह से पगे निरालाजी अनेक व्यक्तियोंके लिए एक रहस्यमय व्यक्ति रहे हैं। जीवन-संघर्षसे अनवरत युद्ध करने वाला व्यक्ति स्वभावतः कुछ अक्खड़ हो जाता है; पर इस मनोवैज्ञानिक विश्लेषणके लिए कौन कष्ट करता है। लोगोंकी एक तस्वीर सामने आती है और चलचित्रकी भाँति एक व्यक्तिके अनेक रूप सामनेसे गुजरते हैं। उन्हीं रूपोंके आधार पर लोग अपनी राय बनाते हैं। हिन्दी-जगतमें निरालाजीकी काव्य-कलापर अनेक विवाद खड़े हुए, और विलीन हो गए, और फिर शहतीरकी भाँति वे सामने आ गये। विवाद किसी बातको लेकर ही होता है। निष्प्राण तथा सारहीन बातपर विवाद नहीं होते। इस छोटेसे लेखमें इन पंक्तियोंके लेखकको न तो निरालाजीके व्यक्तित्व का विश्लेषण करना है और न उनकी काव्य-साधनाकी समीक्षाही करनी है। बड़ी प्रसन्नताकी बात है—और निरालाजीके शुभ कर्मोंका यह फल है—कि उनके जीवनमें ही उनके विषयमें कलकत्तामें एक अभिनंदन-ग्रंथ भेंट किया जा रहा है। इस श्रद्धांजलि-सुरसरिमें इन पंक्तियोंका लेखक भी अपने फूल चढ़ाकर अपनेको धन्य मानता है। उनकी काव्य-कलाकी समीक्षाके लिये यह न तो स्थल है और न समय ही।

निरालाजी इन पंक्तियोंके लेखकसे शायद दो-तीन बरस छोटे हैं। निरालाजी की सबसे पहली कविता जब उसे पढ़नेको मिली, तब उसे इस बातसे आश्चर्य हुआ कि निरालाजीके सामने शब्द मानो हाथ जोड़े खड़े रहते हैं। निरालाजीका छन्द इन पंक्तियोंके लेखकको पसन्द नहीं आया, पर यह खयाल करके कि शब्द परमात्माका स्वरूप है और कविताके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह छन्दोंके व्यवधानमें बंधे और छन्द-शास्त्रकी व्यापकताका खयाल करके और गुरुजनोंसे संलाप करनेके बाद इसी नतीजे पर आना पड़ा कि हम जो कुछ बोलते हैं, वह सब छन्दमय है और उसको हम मात्राओंकी सीमामें भी बाँध सकते हैं, तब फिर कोई किसी भी छन्दमें लिखे। अतुकांत कविता करे अथवा गद्यमें ही पद्य लिखे, तो हर्ज क्या है। इस बातका प्रमाण हमें एक दिन लखनऊमें श्री दुलारेलाल भार्गवके यहाँ मिला, जब स्व० अजमेरीजीने

एक रद्दी कागजको उठाकर एक संगीतज्ञकी हैसियतसे पढ़ना आरम्भ किया। निरालाजी संगीतके भी ज्ञाता हैं। स्व० मुंशीजीने समाचार पत्रकी एक पंक्तिको गाकर पढ़ना शुरू किया और निरालाजीसे तीन ताल हाथसे देनेको कहा। निरालाजी और इन पंक्तियोंके लेखकने खाली और भरी तालें लगाईं और स्व० मुंशीजीने साधारणसे वाक्यको संगीतकी स्वर-लहरीमें पढ़ दिया। जब हमने बन्धुवर पं० हरिशंकरशर्माके छन्दशास्त्र सम्बन्धी खोजपूर्ण लेखको पढ़ा, तब काव्यके सम्बन्धमें लेखककी धारण यह हो गई कि निरालाजीकी अतुकांत कविता काव्य-शास्त्रके अन्तर्गत ही है। टैनिसन आदि अंग्रेजी कवियोंने 'ब्लैंकवर्स' में जो लिखा है वह क्या शास्त्र-स्पर्शी नहीं है।

निरालाजीसे इन पंक्तियोंके लेखकका परिचय सन् १९२३ में कलकत्तेमें हुआ। 'मतवाला' के कार्यालयमें मतवाला-मंडलके जो व्यक्ति थे उनकी धज ही निराली थी। सेठजी हुक्का गुड़गुड़ाते मिले। थोड़ीसी बातें निरालाजीसे हुईं। बादमें निरालाजीको लेकर 'विशाल भारत' में चर्चा हुई। निरालाजी सम्बन्धी वह साहित्यिक विवाद एक धूमिल चित्रकी भाँति सामने है। पर अपना निजी मत यह है कि उस विवादमें 'विशाल भारत' और इलाहाबादके 'भारत' में आवश्यकतासे अधिक चर्चा हुई और कुछ अतिरंजन भी हुआ। इन पंक्तियोंका लेखक इस बातको निस्संकोच रूपसे लिखता है कि जब कभी ऐसे विवाद खड़े होते हैं—वे विवाद चाहे साहित्यिक हों, चाहे राजनीतिक—तब कुछ व्यक्ति और परिस्थितियाँ उस विवादको अनुचित रूपसे बढ़ा देते हैं। यह बात इसलिए लिखनी पड़ी कि निरालाजीको उस विवादसे काफी मानसिक क्लेश हुआ और यदि उनके निकटतम मित्र सावधानी और सहनशीलतासे काम लेते, तो उस विवादका वह रूप भी न हो पाता।

सन् १९३२-३३ में इन पंक्तियोंके लेखकको कटियारी रियासतके सम्बन्धमें लखनऊ जाना पड़ता और वहाँ निरालाजीसे भेंट होती। ड्यूविट रोड पर शायद वे रहते थे और पास ही चाय-घर था। जब कभी निरालाजीसे बात होती तो बिना चायके वे आने न देते। घोर परिश्रमसे वे जीवन बिता रहे थे। चायघर वालोंसे पूछा कि निरालाजीके नाम कितने चायके प्याले लिखे जाते हैं, तो मालूम हुआ कि उसी दिन उनके नाम ५६ प्याले लिखे गए थे! शायद आठ-दस प्याले उन्होंने पिये हों, शेष मित्रोंके आतिथ्यका ही खर्च था। पैसा पास नहीं था। हिन्दी साहित्यकी दलबन्दी और रीडरवाजोंकी तिकड़मसे वे परे थे, इसलिए कलमके मजदूरकी हैसियतसे ही वे जीवन-निर्वाह कर रहे थे। उन मुसीबतके दिनोंमें भी उनकी आकृति पर तनिक भी बल न था।

मिलनेके दौरानमें निरालाजीसे वेदान्त पर बात होती। अधिकांश पाठकोंको शायद यह न मालूम हो कि निरालाजी दार्शनिक वृत्तिसे अद्वैतवादी हैं। शांकर भाष्यपर चर्चा रहती। जब कभी समाचार पत्रोंकी आलोचना आती, तब वे यही कहते और इन पंक्तियोंके लेखकको भी यही कहना पड़ता कि अपने कर्त्तव्य-पालनमें जुटा रहना चाहिए, किसीकी साहित्य-साधना और लेखन-कलाका मूल्यांकन हर कोई नहीं कर सकता। केवल समय ही बता सकता है कि साहित्यमें कौनसी चीज स्थाई है, कौनसी अस्थाई। उच्च कोटिका साहित्यसेवी बननेके लिये यह आवश्यक नहीं कि किसीने कितने रुपये कमा लिये हैं, कितनी पुस्तकें पाठ्य-पुस्तकोंमें हैं।

एक दिन ह्यूविट रोड पर हम जा रहे थे और गुरुदेव रवीन्द्रनाथकी चर्चा होने लगी। निरालाजीमें एक प्रतिक्रिया हुई थी। इन पंक्तियोंके लेखकने उसका विरोध किया, पर निरालाजीने उसका बुरा न माना। यह बात सब जानते हैं कि निरालाजी का बँगलाका ज्ञान असाधारण है। इन पंक्तियोंके लेखककी यह भी धारणा है कि यदि निरालाजीके साथ उनके मित्र और विरोधी सद्व्यवहार करते, तो उनके मानसिक कष्टकी वह सीमा न होती।

हम लोग (निरालाजी और लेखक) एक दिन परमहंसजीकी चर्चामें रत थे और विचारोंकी उड़ानमें मस्त थे कि पीछेसे एक बिजार दौड़ता हुआ आया और निरालाजीके वह बगलू धक्का लगा कि और कोई व्यक्ति होता तो भुनगेकी भाँति कुचल जाता। धक्केका लगना था कि निरालाजी डगमगाये और अपने विशाल शरीरसे उन्होंने निहाईका काम लिया। बिजारके वेगमें ब्रेक लगा और शायद वृषभ-कंध निरालाजीको देखकर उसने अपना प्रतिद्वंदी समझा। रुककर वह फिर मारने आया। इन पंक्तियोंके लेखकने बिजारकी पूंछ पकड़ी और निरालाजीने उसके सींग पकड़ कर गरदनको टेढ़ासा कर दिया। इन पंक्तियोंके लेखकको इस बातसे बड़ी प्रसन्नता हुई और हँसीमें उनसे कहा, 'आप रहस्यवादी और छायावादी कहाँ हैं, आप तो विशुद्ध कायावादी हैं। छायावादी तो शकलसे ही मालूम हो जाते हैं। आपके कदम डगमगाते नहीं पड़ते, शरीर भी मरघिल्ला नहीं है, ऊपरी टीमटाम भी नहीं है। बहरहाल छायावादीका बाह्य रूप भी नहीं है।" हँसी-मजाकके साथ होटल पहुंचे, दो-दो प्याले चाय पी।

निरालाजीसे जब कभी कवियोंकी चर्चा होती, तब वे स्व० श्रद्धेय कविवर नाथूराम शंकरके प्रति अपनी अटूट भक्ति प्रकट करते। जब उनसे इन पंक्तियोंका लेखक

यह कहता कि यदि शंकरजी अबसे दो सौ-तीन सौ वर्ष पूर्व हुए होते तो उनका स्थान हिन्दी साहित्यमें बिहारी और देवके समान होता, तब वे इस बातकी ताईद करते। हिन्दी साहित्यमें या यों कहिए कि हिन्दी साहित्य सेवियोंमें साहित्यकी आड़ लेकर अनेक लोग व्यापारिकताका धंधा कर रहे हैं। निरालाजीका इस प्रकार शोषण ही हुआ है। उन्होंने किसीका शोषण किया नहीं। आधुनिक युगमें किसी साहित्य सेवीका यह रूप कोई कम अच्छा नहीं है। सांसारिक दृष्टिसे अथवा रुपये-पैसेकी दृष्टिसे निरालाजी घोर असफल हैं। पर इन पंक्तियोंका लेखक उनकी इस असफलताका कायल ही है, क्योंकि कविवर अकबरके शब्दोंमें निरालाजीके लिये यह कहा जा सकता है:—

मेरी नाकामयाबी की कोई हद हो नहीं सकती,
खुशामद हो नहीं सकती, सदाक़त चल नहीं सकती।

निरालाजीका प्रतिनिधित्व

श्री लक्ष्मणनारायण गर्दे

श्री निरालाजीके साथ मेरा सम्पर्क बहुत कम रहा है। पर जब जितना भी रहा, असाधारणसा ही रहा। 'मतवाला' के मुखपृष्ठ पर मैं उनकी कविता देखता था। 'कविता-विवेक' तो मुझमें कभी था ही नहीं, अतः उस दृष्टिसे मैं उन कविताओं की परख क्या करता? पर उनका पद-विन्यास देखकर भाषापर श्री निरालाजीके प्रभुत्वका प्रमाण बराबर मिलता था। कविताका मर्म समझनेके लिये कुछ गहराईमें गोता लगानेकी-सी स्थिरता मुझ जैसे अति व्यस्त पत्रकारमें कहांसे आती? निराला जीसे कभी कभी मेरी बातचीत भी हुई है। एक बार कलकत्तेके 'श्रीकृष्ण-सन्देश' कार्यालयमें वैदिक छन्दोंके सम्बन्धमें उनके विचार जाननेका मुझे अवसर मिला था। फिर हम लोगोंकी एक गोष्ठीमें गोस्वामी तुलसीदासजीके सम्बन्धमें उन्होंने एक निबन्ध पढ़ा था। इसकी भाषा और विचार दोनोंका ही मुझपर विशेष प्रभाव पड़ा। सामान्य रूपसे मिलते और बात करते हुए भी वे मुझे सदा इस धरातलसे बहुत उच्चस्तर पर देख पड़े। पूंजीवाद-विरोधी वर्त्तमान युगका वे प्रतिनिधित्व करते हैं, पर, उसी उच्च धरातल से। वे रहते ही हैं, 'अतः ऊर्ध्वम्'। उनका एक असाधारण व्यक्तित्व है—अध्ययनका स्वयं एक गम्भीर विषय—एक महाकाव्य।

श्रद्धेय निरालाजी

माननीय पत्रकार, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

कविवर निरालाजीके निकटसे दर्शन और कुछ वार्तालाप करनेका सौभाग्य मुझे कुल तीन बार ही मिला है। एक बार वे थोड़ी देरके लिये 'विशाल भारत' कार्यालय पर पधारे थे तब, और दूसरी बार जब वे विद्यासागर कालेजके छात्रोंकी मीटिङ्ग में भाषण देने गये थे। तीसरी बार बातचीत तब हुई जब कि अबोहरके हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अवसरपर वे उस कमरेमें आये, जहां हम लोग—बुन्देलखण्डके प्रतिनिधि, ठहरे हुए थे। इन तीनों प्रसङ्गोंके मधुर संस्मरण इस समय मेरे मस्तिष्क में घूम रहे हैं।

पहली घटना २३-२४ वर्ष पूर्वकी है, इसलिये उसकी सिर्फ धुंधलीसी याद ही अवशिष्ट है। निरालाजीका वह वार्तालाप मौलिक विचारोंसे परिपूर्ण और मेरे लिये स्फूर्तिप्रद था।

विद्यासागर कालेजकी मीटिङ्गमें निरालाजीका भाषण प्रभावोत्पादक रहा। उक्त अवसरपर उनका बँगला भाषाका असाधारण ज्ञान स्वभावतः सहायक सिद्ध हुआ।

हाँ, अबोहरका सम्मिलन अत्यन्त हर्षप्रद था। उन दिनों निरालाजीको अंग्रेजी में बोलनेका चाव था और कमरेमें प्रवेश करते ही उन्होंने कहाः—"So you are staying in this compartment"? (सो आप इस कम्पार्टमेण्टमें ठहरे हुए हैं!) मैंने उत्तर दिया, "And here is a railway train indeed and I am the Engine Driver." अर्थात् "यहाँ सचमुच एक रेल है और मैं उसका इंजिन-ड्राइवर हूँ!" खूब हँसी हुई।

तत्पश्चात् निरालाजीने 'जुहीकी कली' नामक अपनी उत्कृष्ट रचना सुनाई। फिर हम लोगोंके विशेष आग्रह पर दो-तीन बँगला कविताएँ भी। वे कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी थीं या डी० एल० रायकी, यह मुझे ठीक-ठीक स्मरण नहीं।

हम लोग मंत्रमुग्धसे उनका वह काव्यपाठ सुनते रहे। यद्यपि साहित्य क्षेत्रमें हम लोगोंका कुछ वाद-विवाद चल चुका था, तथापि उसका कोई जिक्र उस समय नहीं आया और बड़े माधुर्य्यमय वातावरणमें वह मीटिङ्ग समाप्त हुई।

आज जब कि निरालाजी पर एक अभिनंदन ग्रन्थ निकल रहा है, किसी भी पुराने बहस-मुबाहिसेका उल्लेख करना उक्त माधुर्य्यमें कटुता उत्पन्न करना है। वादविवादोंको दफनानेकी जरूरत है, उभाड़नेकी नहीं।

हिन्दी जगत्‌में जितना शोषण निरालाजीका हुआ है, उतना शायद ही अन्य किसी लेखक या कविका हुआ हो। दुःखकी बात यही है कि उनके विषयमें विवेक से तथा सन्तुलन पूर्वक लिखा हुआ कोई भी ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ। ग्रन्थकी बात तो रही दूर, निरालाजीके बारेमें कोई अच्छा रेखा-चित्र भी हमारे देखनेमें नहीं आया। बन्धुवर श्री नन्ददुलारेजी वाजपेयीने एक छोटासा ट्रैक्ट अवश्य निकाला था, पर वह विवरणात्मक ही था। यह उस समयकी बात है, जब उन्हें अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करनेकी चर्चा चली थी। उस लेखमें निरालाजीके सम्पूर्ण साहित्यिक कार्य्यपर एक सरसरी नज़र डाली गई थी। उसे पढ़कर मैं उस बृहद् कार्य्यका अनुमान लगा सका, जो निरालाजी तबतक कर चुके थे। निरालाजीकी उन्मुक्त दान शीलता तथा अनुपम आतिथ्य-भावनाके दृष्टान्त मैं श्रीमहादेवीजी वर्मा आदिसे सुन चुका हूं। ऐसे असाधारण व्यक्तित्वको किसीने सजीव रेखाचित्रमें अङ्कित क्यों नहीं किया?

यह बतानेकी आवश्यकता नहीं, कि अत्यधिक प्रशंसा अथवा असंयत निन्दा दोनों ही रेखा-चित्र अङ्कित करने वालेके लिये त्याज्य हैं। और इन सबसे अधिक आवश्यक है बौद्धिक ईमानदारी। चाहे हम महात्मा गान्धीजीके विषयमें लिखें या कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी आलोचना करें, हर हालतमें हमें अपने बुद्धि-विवेक तथा अन्तरात्माके प्रति वफादार ही रहना चाहिये। प्रकाश तथा छाया भागके यथोचित सम्मिश्रणके बिना सजीव चित्र खिंच ही नहीं सकता। निरालाजीके जीवनमें प्रकाशके कितने ही ऐसे स्थल हैं, जिनका चित्रण करनेके लिये कुशल चित्रकारकी आवश्यकता है। इन पंक्तियोंके लिखते समय मुझे याद आ रही है उस करुणोत्पादक कविता की, जो निरालाजीने अपनी पुत्रीके विषयमें लिखी थी। सम्भवतः उनके चरित्रमें छाया-भाग भी होंगे (और किसके नहीं हैं?)। खूबी इसीमें है कि उन परस्पर विरोधी (या पूरक?) गुणोंका कलापूर्ण सामंजस्य किया जाय। निरालाजीने हिन्दी साहित्यके एक ऐतिहासिक अवसर पर जो क्रान्तिकारी कार्य्य किया है, उसके कारण उनका शुभ नाम हिन्दी जगत्‌में अमर रहेगा। एक विवेकयुक्त जीवन चरित या संतुलित रेखा-चित्र उनके गौरवको बढ़ावेगा ही।

हम लोग निरालाजीके इतने निकट हैं कि उनकी साहित्य-सेवाका उचित मूल्याङ्कन हमारे लिये बहुत कठिन है। शायद उसके लिये यह अवसर उपयुक्त भी नहीं। इस समय तो हम लोगोंका एक ही पवित्र कर्तव्य है, यानी उन्हें किसी स्वास्थ्यागार में भिजवाना, जहाँ वे अपना खोया हुआ स्वास्थ्य पुनः प्राप्त कर सकें। शिष्टता तथा सहृदयताका भी यही तकाज़ा है कि निरालाजीके शुभ नामको विवादोंसे अलग रक्खा जाय। वे हम सबके लिये श्रद्धेय हैं।

निरालाजी : निकटसे

श्रीमती चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा'

बात यह पंजाब अबोहर-हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी सन् १९४१ दिसम्बरकी है। अतिथियोंके ठहरनेके लिये कई प्रकारके प्रबन्ध थे। हम लोग उस समय प्रयाग से गए थे, जिसमें श्री निर्मलजी भी थे। वे मेरे जेठ स्वर्गीय पं० चन्द्रशेखर शास्त्रीके निकट-सम्पर्क व्यक्तियोंमेंसे थे। वह यह जानते थे कि अबोहरके पूर्व मैं दो कवि-सम्मेलनोंमें कविता पढ़ चुकी हूँ और तीसरी बार साहित्य सम्मेलनके कवि-सम्मेलनमें बुलायी गयी थी। वहाँ वे साहित्यिक महारथियोंसे मेरा परिचय दे देंगे। मेरे जेठके निधनके बाद मेरे भतीजे पं०प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' पटना जा बसे। प्रयागसे विशेष सम्बन्ध नहीं रहा। इसलिये वह परिचय दिन-प्रतिदिन धुँधला ही होता जा रहा था।

वह एक पञ्जाबका ग्राम ही था उस समय। पता नहीं आज परिवर्तनशील संसार में वह क्या है। तमाम लोग खेमेमें ठहरे थे और हम लोगोंके लिए वहाँके स्कूलमें ठहरनेका प्रबन्ध था, जो सम्मेलनके पण्डालसे कुछ दूरीपर था। सम्मेलन क्या, एक मेला जैसा था। दूध, फल, चाय आदि दूकानें भी वहाँ थीं। हम लोग प्रतिदिन प्रातः काल चाय पीने जाया करते थे। एक दिन उस छोटे तम्बूमें भीतर घुसते ही हम लोगोंने देखा, एक टेबुलके किनारे कुर्सीपर एक असाधारण व्यक्ति। कोई भी वहाँ जाता तो उसकी दृष्टि वहीं जाकर टिकती। श्री निर्मलजीने वहींसे दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। प्रत्युत्तरमें उस ओरसे भी दोनों हाथ उठे और एक साथ ही हम लोगों पर भी दृष्टि पड़ी और बड़ी ही विनम्रतासे प्रति-नमस्कार किया, मैंने भी हाथ जोड़ा। यह सब खड़े होकर नहीं, बल्कि पाँव हम लोगोंके उसी स्थानकी ओर बढ़ रहे थे, जहाँ वे बैठे थे। वहाँ जाकर हम लोग खड़े हुए।

मेरी ओर देख उन्होंने कहा, "बैठिए"। मैं एक कुर्सीपर बैठ गयी। फिर निर्मलजीसे उन्होंने पूछा—"कहो निर्मल, और क्या हाल है।" फिर मेरी ओर संकेतसे पूछा, "आपका परिचय तो कराओ।"

निर्मल—"ये हैं, अभी साल भरसे कविता लिख रही हैं, नाम है श्रीमती चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा', प्रयागकी रहने वाली हैं और ये हैं श्री रामेश्वर ओझा।" हम लोगोंने फिर नमस्कार किया।

निर्मलजी मुझसे बोले, "आप हैं युगप्रवर्तक पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'।"

आदरणीय निरालाजीने फिर मुझसे पूछा, "आप कहाँ ठहरी हैं?"

मैंने कहा, "स्कूलमें।"

वे बोले—"वहां तो एक-एक कमरेमें कई-कई व्यक्ति ठहरे होंगे। आपको तो असुविधा होती होगी।"

मैं चुप ही थी, क्योंकि असुविधा तो थी ही, किन्तु निराकरण क्या था। फिर वे ही बोले—"मैं डाकबंगलेमें ठहरा हूँ, कई कमरे हैं, चाहें तो निर्मल इनका सामान यहां भिजवा दो। एक अलग कमरा मिल जायगा।"

निर्मलजी, "क्या कीजियेगा, कल कवि-सम्मेलन है ही, परसों चल ही देना है। दो दिनकी बात है।"

निरालाजी—"ठीक है, जैसा समझो।' फिर पूछा, "और आपके यहां कोई कुछ लिखता-पढ़ता है।"

निर्मलजी—"अरे हां, आपको बतावें, यह स्वर्गीय पं० चन्द्रशेखर शास्त्रीकी अनुज-वधू हैं। ये उनके सबसे छोटे भाई हैं।"

निरालाजी—"ओ हो, वे तो मेरे गुरुजनोंमेंसे एक थे और प्रफुल्लचन्द्र कहाँ हैं? वे आपको क्या कहते हैं? उनका तो मेरा भाई-चारा है।"

मैं—"प्रफुल्ल मुझे काकी कहते हैं।"

फिर धीरे-धीरे मुस्कराते हुए बोले-"इस प्रकार तो आप मेरी भी काकी हुईं।" और फिर हंसीका स्रोत फूट पड़ा था। मैंने गर्दन झुका ली। तब वे बोले—"क्या आप शरमा गयीं। इसमें शरमानेकी क्या बात है।"

मैं बोली, (गर्दन उठाकर) – "जी नहीं, मेरे लिये तो गर्वकी बात है, लज्जाकी नहीं।" और वास्तवमें, आज तक आदरणीय निरालाजीका हम लोगोंके परिवारसे पारिबारिकताका ही संबन्ध रहा।

फिर वे बोले—"तो आज दिनमें भोजन हमारे साथ ही करिए न!"

मैंने कहा—"ठीक है।"

निरालाजी—"तो फिर क्या करेंगी वहां जाकर। चलिए सब साथ ही। कुछ सुनाइए अपनी कविताएं। देखूं, कैसा लिखती हैं।"

मैंने कहा—"अभी तो स्नान वगैरह करना है, फिर आ जाऊँगी।" और चाय पीकर हम लोग अपने स्थान पर चले आये। नहा-धोकर निर्मलजीने कहा—"भाई जल्दी चलो। कुछ खा-पीकर हम लोग निरालाजीके पास पहुंच जायं। नहीं, वे सब प्रबन्ध कर चुकेंगे। एक गलती हो गई है! उनको यह नहीं बताया गया कि तुम लोग मांस नहीं खाते।"

जल्दी ही खा-पीकर हम लोग डाक बंगले पहुंचे ! देखा, वे लिहाफके अन्दर बैठे हैं। कहा, "आइये। मैंने मुर्ग-मुसल्लम बनवाया है। आपको पसन्द तो होगा।"

मैंने कहा—"हम लोग तो खा-पीकर आए हैं। इसीलिए कि आपको पता नहीं था कि मैं छूती भी नहीं, और मुझे पता नहीं था कि आप खाते हैं!" वे फिर बोले—"अलग बनवा दें? बाजारसे मंगवा दें?"

मैंने क्षमा माँगकर कहा, "आज क्षमा करें। अब आप समझ चुके हैं, फिर जब कहेंगे, खालूंगी।"

निर्मलजीने प्रसंग बदलनेके लिये कहा—"जाने दीजिये, खाने-पीनेमें क्या धरा है, आप इनकी कविता सुनिए। सुनाओ भाई।"

मैंने सुनाई कवितायें तीन चार, उन्होंने सुनीं। फिर कुछ प्रशंसा की, जिसे यहां लिखकर अपनी बात कहनी होगी। फिर निर्मलजीने पूछा—"आप सम्मेलनमें दिखाई नहीं पड़े?"

निरालाजी—"किसी विद्वान, लेखक, ग्रन्थकारके सभापतित्वमें मैं जा सकता हूं। किन्तु जिसे तुम लोगोंने सभापति चुना है, उन्होंने क्या किया है हिन्दी साहित्यके लिये, क्या लिखा है हिन्दीमें ! केवल बड़े बापके बड़े बेटे होने या युनिवर्सिटीके सर्वेसर्वा होनेके कारण ही तुम लोगोंने उसे सभापति चुना है। मैं ऐसे पण्डालमें पैर नहीं रखता। उसके सभापतित्वके बाद मैं पण्डालमें आऊंगा।" इसी प्रकार कितनी ही बातें सम्मेलनके संबंधमें निरालाजी कह गये। एक ओर स्वाभिमान छलकता, दूसरी ओर शिशु-सी स्वाभाविक सरलता। दोनोंका सामंजस्य इस महामानवमें देखकर मेरा मन श्रद्धासे भर गया।

युगप्रवर्तक निरालाजीका यह मेरा प्रथम साक्षात्कार था। दूसरे दिन कवि-सम्मेलनकी कार्यवाही आरम्भ हुई। अपार जनसमूहके बीच बने मंचपर निरालाजीके तत्वावधानमें आठ बजेसे कविसम्मेलन आरम्भ हुआ। तीन बजेतक चलता रहा। वह सम्मेलन कितनी शान्ति-पूर्वक सम्पन्न हुआ, यह न देखनेवाले क्या अनुमान कर सकते हैं!

*** ***

लाहौर होते हुए हमलोग प्रयाग वापस चले आये। साथ ही निरालाजीकी महानताकी एक छाप मनमें लिये हुये। कुछ मास बाद एक दिन पं० भगवती प्रसादजी वाजपेयीके साथ सबेरे निरालाजी आए। तब मैं दारागंजमें अपने पिताके मकानके सामने ही एक मकानमें रहती थी! उन दिनों निरालाजी, पं० श्रीनारायणजी

चतुर्वेदीके यहां ठहरे थे। चाय बनाकर मैं ले आयी, साथ ही नमकीन टिकिया। निरालाजीकी ओर प्लेट बढ़ाते हुये मैंने पूछा—"कोई अचार दूं।"

निरालाजी—"हां, हां लाइये।"

मैं प्लेटमें करौंदेका अचार निकाल लाई। निरालाजीने पूछा—"क्या यह सब आपही बनाती हैं।"

मैं—"जी हां, मैं तो घरमें अकेली हूं।" खिड़कीसे सामने दिखाकर कहा, "यह मेरा मैका है। मां है, बड़ी दीदी और जीजा हैं।" बहनको वहींसे पुकारा। दीदी चार मासके बच्चेको लेकर आ गयीं। उसके होनेके बादसे ही मैं कुछ-कुछ बीमार रहने लगी थी। दीदीसे परिचय हुआ। फिर निरालाजीने एक बार वैसे ही पूछा, जैसे अबोहरमें मुझसे पूछा था, "प्रफुल्लकी आप कौन हैं?"

मैंने कहा—"मौसी!"

निरालाजी—"मौसीसे अच्छा मासी लगता है, मैं तो मासी कहूंगा। सदा नहीं, जब कभी मन होगा।" फिर बच्चेको मांगा। गोदमें लेकर झुलाते हुये सूरके बाल-रूपकी रचना बड़े मगन होकर गुनगुनाने लगे। फिर मुझसे पूछा, "इसका नाम क्या रखा है?"

मैं—"मुकुल।"

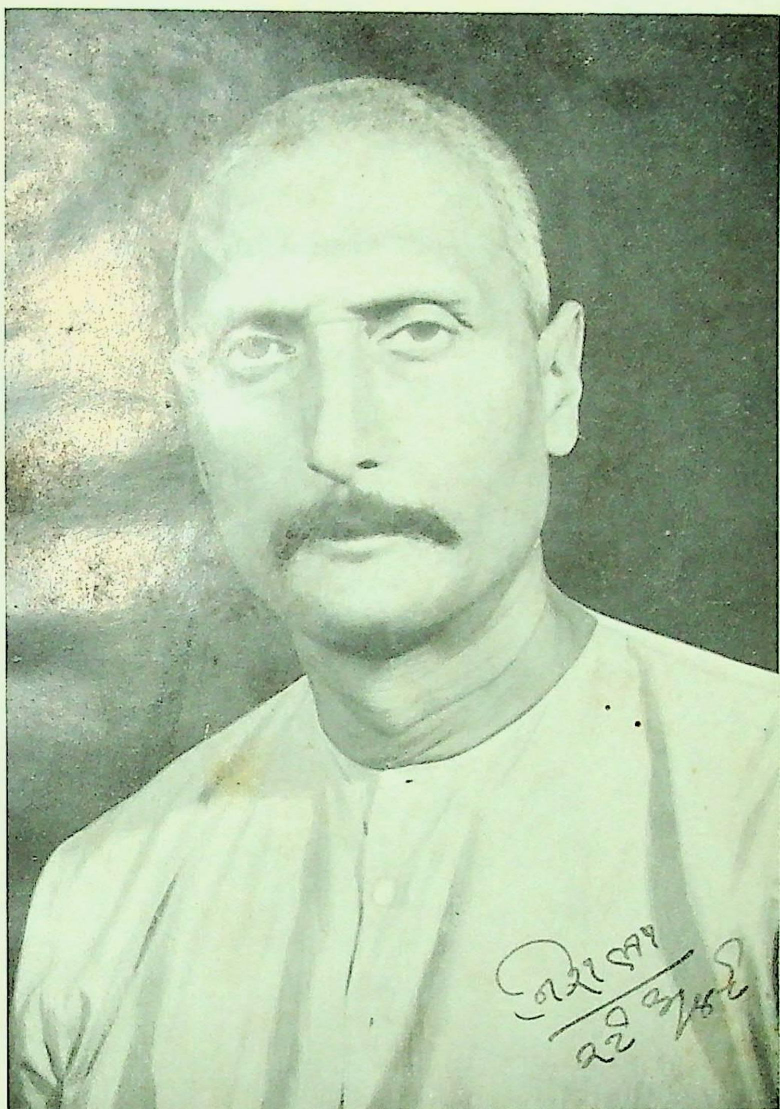
निरालाजी—"मुकुल नाम तो आपने बहुत ही सुन्दर रखा है, किन्तु और क्या लगेगा! मुकुलचन्द्र ओझा या मुकुलकुमार ओझा।"

मैंने कहा—"मुझे तो चन्द्रसे कुमार रुचिकर लगता है।"

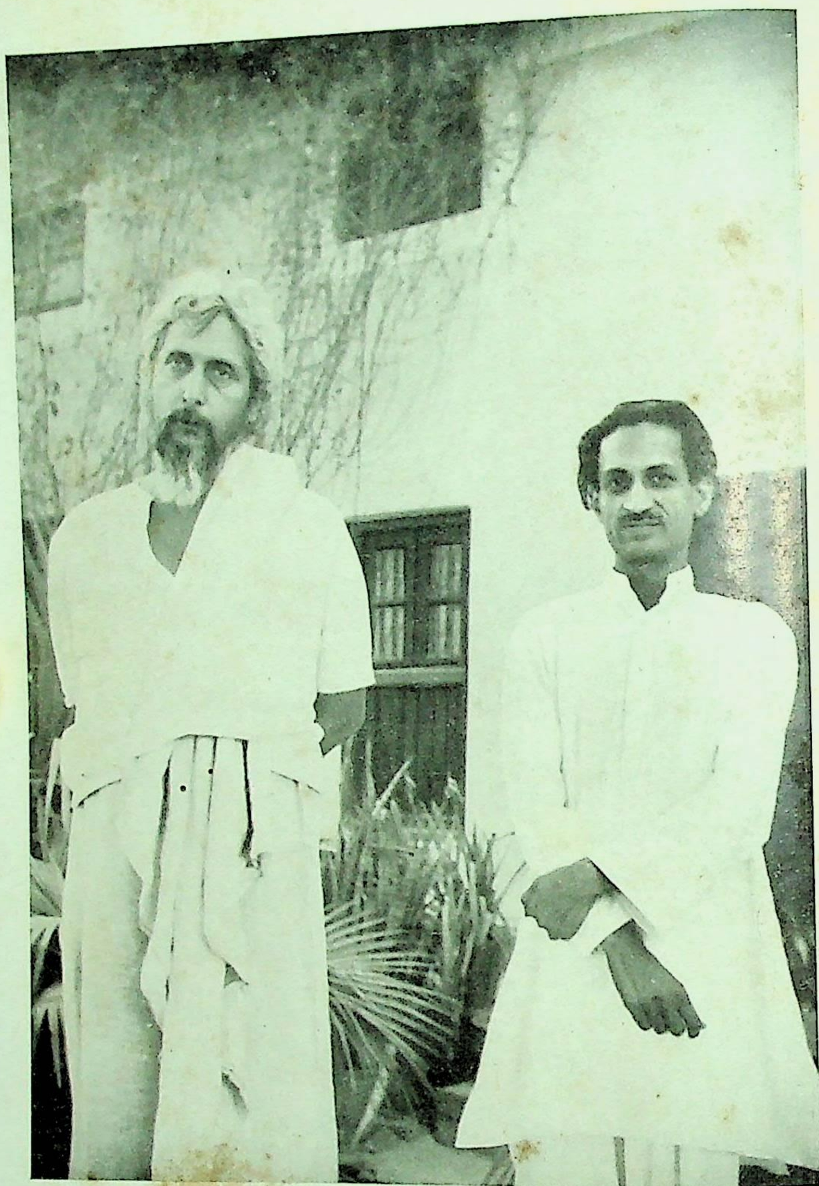
थोड़ी देर रुककर, चाय पीकर वे दोनों, निरालाजी तथा वाजपेयीजी, चले गये। निरालाजीकी सहज, सरल अभिव्यक्तियां इस बार और भी अधिक मनमें घर कर गईं।

मेरा स्वास्थ्य गिरता ही गया। कई महीने बाद मैंने बदलकर एक दूसरा मकान ले लिया। उसीमें रहती थी। इधर श्री निरालाजी चतुर्वेदीजीके यहांसे हटकर श्री वाजपेयीजीके यहां रहने लगे थे; खाने पीनेकी व्यवस्था निश्चित कुछ न थी, इस-लिये यह एक पहेली-सी ही थी। समय बड़े ही संकटका था, टोटल राशनिंगका युग। कब कहां, क्या खाते थे, कोई जान न पाता था। यह था वहांका समुदाय!

एक दिनकी सांझ। सन् ४३, महीना ठीक याद नहीं। ओझाजी (पतिदेव) इण्डियन प्रेसमें काम करते थे। वहींसे लौट रहे थे, इस बीच मार्गमें निरालाजीसे भेंट हो गई। नमस्कारके बाद ओझाजीने कहा—"इस बीच आपके दर्शन नहीं हुये।"



शिव शिल्पी



[चित्र : श्री जी० पी० अर्गल

शाहंशाह निराला के साथ श्रीवरुआ

[साहित्यकार संसद, रसूलाबाद में]

निरालाजी—"चलो चल रहा हूं।" पर आगे बढ़े जा रहे थे।

ओझाजी—"क्या अभी कहीं जा रहे हैं?"

निरालाजो—"नहीं तो। चलो; चलें। फिर साथ ही चले।" उस समय मैं मूंगकी दाल, लौकीकी तरकारी और रोटी बनाकर प्रतीक्षामें थी। द्वार खटका, ऊपरसे देखा, साथमें निरालाजी हैं। नहीं, देरका बना भोजन, बीमार देह लेकर प्रतीक्षामें गरम बनाए रखना! एक अजीब झुंझलाहट-सी हो रही थी। वह निरालाजीको देखकर ही दूर हो गयी। आकर निरालाजी पूछते थे—"कहिए चाय तो नहीं पिला रहीं?"

वैसे ही उस दिन पूछा। मैंने चौकेमें जाते-जाते कहा, "जारही हूं पानी चढ़ाने" और पानी, लकड़ी सरकाकर, जल्दीसे चढ़ा दिया। नमकीन टिकियाके लिए आटा गूंधने लगी। इसी बीच निरालाजीने पुकारा—"सुनिये, एकाध रोटी और सेंक लीजिए। खाना बन रहा होगी अभी तो?"

मैं—"जी, खाना तो बन चुका है, आपको जो नमकीन टिकिया पसन्द हैं, वह बनाए लेती हूं जल्दी से।"

निरालाजी—"जाने दीजिए, देरकी बात नहीं, आप अस्वस्थ हैं। चाय ही बनाएंगी, यही बहुत है।"

चौकेमें जाकर ओझाजीके लिए थाली परसी और निरालाजीके लिए टिकिया, अचार और चाय। टिकिया ग्यारह तैयार हुई थीं। आगे छतपर पटरा रख, ओझाजीकी थाली परसी और चारपाई बिछाकर कुर्सीपर चायका सामान। निरालाजीने चार टिकिया निकालकर ओझाजीकी थालीमें रख दीं और कहा—"दो रोटी मुझे दे दो।" फिर पूछा, "तरकारी किस चीज की है।"

मैं सकुचाते हुए बोली, "सादी लौकी की, परहेजी खानेमें और क्या बने?"

निरालाजी—"लाइये, देखें तो?"

मैंने लौकीकी सब्जी दे दी। उन्होंने खाना खाने तथा चाय पीनेके बाद कहा, "मैंने इतनी स्वादिष्ट लौकी की तरकारी नहीं खायी। कैसे बनाती हैं?"

मैंने कहा—"थोड़ेसे ही घी में जीरा और हींगका बघार और नमक। न मैं मिर्चा छोड़ती हूं और न हल्दी ही।"

"बात यह है कि मसालेदार चीजोंमें तो गोश्त होता है खाने लायक। वह मुझसे अच्छा तो कोई बनाता नहीं! अच्छा, अब जरा थोड़ी देर लेट जाऊँ, सरमें कुछ दर्द-सा हो रहा है।"

मैंने कहा—"क्यों, कबसे ?"

निरालाजी—"क्या बताऊँ कबसे ? आज एक सप्ताह बाद मुझे रोटी मिल सकी है खानेको। इसलिए।"

मैं—"तो किसीको दिखाइये न। ऐसे कैसे काम चलेगा ?"

निरालाजी—(हँसकर गम्भीरतासे) "हः हः मेरे पास खानेका कोई उपाय न था, इसलिये। रोगके कारण नहीं।"

मुझे तो जैसे काठ मार गया। फिर कुछ क्षण बाद बोली, "क्या आप मुझे इस योग्य नहीं समझते कि आकर खा लेते। यह आपने अपने ऊपर नहीं, हम लोगों पर भी अत्याचार किया है।"

निरालाजी—"नहीं, तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक होता, तो मैं निःसंकोच आ जाता तुम्हारे यहाँ खानेके लिये। मुझे कुछ सोचना नहीं पड़ता।"

मैं—"आखिर मैं भोजन तो बनाती ही हूं। और दूसरा तो कोई नहीं बनाता।"

निरालाजी कुछ क्षण चुप रहे। फिर बोले—"मैं तुम्हारी बहनसे कहूंगा, तुम्हारे स्वास्थ्य की चिन्ता करें, साथही मदद दें।"

***　　　***　　　***　　　***

धीरे धीरे मैं स्वस्थ होने लगी। निरालाजीने अलग एक मकान, इस बीच, ले रखा था। एक पंडाका मकान था। किन्तु खाने-पीनेकी अव्यवस्था हो रही ! हाँ, प्रतिदिन चाय पीनेके लिये सवेरे-शाम निरालाजी मेरे यहाँ आया करते। इधर मेरा मुकुल भी करीब दो सालका हो चला था। अब वे आते, तो मुकुलको ही पुकारते। कभी उसे दी गई मेरी डाँट सुनते, तो कहते—"आपको डाँटनेका अधिकार नहीं है। यह समाजकी सम्पत्ति है। इसकी रक्षा कीजिये।"

इतना संकट पड़ा, किन्तु निरालाजीने राशन कार्ड नहीं बनवाया ! इसलिये कि निरालाजीको तौलकर अन्न दिया जायगा उसके लिये उनका नाम कार्डमें दर्ज किया जाय, ऐसा कभी न होगा। किसी सज्जन द्वारा उनको शुद्ध घी प्राप्त हो जाता था, जिससे कभी वे आलू तलकर और कभी गोश्त बनाकर खा लेते थे। कभी-कभी बाजारसे पूड़ी बनवाकर खाते। कभी पंडाजीसे रुपयेकी सवा सेर की खिचड़ी खरीदते, जो उन्हें दानरूपमें मिलती थी। उस खिचड़ीमें सभी प्रकारके चावल और सभी प्रकारकी दालें होतीं, जिनके कंकड़-मिट्टी बीनकर निकालना भी कष्ट-साध्य ही नहीं, असाध्य ही था !

कभी गंगा स्नान करने जाते, गर्मीके दिनोंमें, तो कंधेपर बड़ासा तरबूज रख लाते। सीधे घर आकर मुकुलको पुकारकर कहते, "माँसे कहो, इसे काटें। चाहे ऐसे खावें-खिलायें, चाहे शरबत।"

मैं कहती, "खाते-खाते तो जी ऊब जायगा। अच्छा होगा, शरबत बना दूँ। कुछ तरी तो मालूम देगी।"

इन चीजोंसे जब मन ऊब जाता, तो कभी कहते, "कुछ मेरे लिये भी बना लेना।" कभी कहते, "जो कुछ हो, दे दो।" भोरकी चायके समय तो मुकुलसे पूछते, "मुकुल, क्या कलेवा है, लाओ किया जाय।" जो कुछ पूड़ी-पराठा-रोटी हो, वह ले जाये और दोनों एक-साथ खाते। इधर चाय बनाकर जब मैं आती, तो क्या बताऊँ, कैसा लगता था, आज सोचकर भी कैसा लगता है !!

कई बार कहा, "एक दिन मेरे यहाँ चलोगी? वहीं खाना बनाओ। दो चार लोगोंको और बुला लिया जायगा।" मैं बराबर कह देती, "जब कहिए।"

एक दिन, साँझ डूबे आये। गर्मीके दिन थे, मैं दीदीके यहाँ थी। पूछा, "चाय तो नहीं पिला रहीं।"

दीदीसे चायका पानी चढ़ानेके लिये कह दिया। दीदी आगयीं। मैं जाकर चाय बना लायी। गुनगुनाती हुई चाय प्यालेमें में डालने लगी, तो निरालाजीकी आँखें सजल हो गयीं और पढ़ने लगे—

"साकार हुई दृष्टिमें सुघर, समझा मैं क्या संस्कार प्रखर,
शिक्षाके बिना बना वह स्वर, है, सुना न अब तक पृथ्वी पर।"

मैंने प्याला लिए कहा, "लीजिए न यह चाय।"

ऊपर सिर करके देखा, सजल आँखोंसे मेरी ओर देख रहे थे। प्याला लेकर कहा, "यह सरोज-स्मृतिमें मैंने लिखा था। ठीक कभी-कभी तुम सरोजकी तरह लगती हो। ऐसे ही हाथ-पैर भी उसके थे! हाँ, ठीक ऐसी ही होती वह।"

अब, कोई क्या कहे? तभी मुकुल आ खड़ा हुआ उनके जंघे पर। हाथ रख करके कुर्सी पर वे बैठे थे। फिर दरी पर बैठ गए। मुकुलको बैठाते हुये कहा, "लो, चाय पीओ।" चाय पीते-पीते पूछा—"कल चल सकोगी मेरे घर। और किसीको न बुलाऊँगा। तुम दोनों बहन, ओझाजी और तिवारीजी (मेरे जीजा)। हम हैं। पाँच आदमीके खाने भरकी खिचड़ी जिस बर्तनमें बन सके, ऐसा निकाल देना: सवेरे चाय पीने आएंगे तो लेते जायंगे। तुम लोग नहा-धोकर आ जाना। नहीं, हम फिर आ जायंगे। साथ ही चली चलना। ठीक है न?" हम लोगोंने कहा—"ठीक है।"

दूसरे दिन सबेरे आये चाय पीने, बड़ा पतीला मांग ले गये। हम दोनों बहनें नहा-धोकर तैयार हुईं, तभी फिर आ गये निरालाजी। हम लोग उनके साथ चले। उन्होंने कहा, "आओ मुकुल" और हाथ पकड़कर धीरे-धीरे चले हम लोगोंके साथ। रास्तेमें एक सब्जीकी दूकानपर रुक गए। हम लोगोंसे कहा, "धीरे-धीरे चलो, तब तक सब्जी लेकर मैं आया।" गली तक पहुंचते-पहुंचते निरालाजी सब्जी और और मुकुलको ले आ गये। उन्हींके साथ घरमें आए। ऊपर देखा, छत पर एक चौकी है, जिसपर वे सोते होंगे। बगलमें रसोईघर, जिसमें एक लोटा, एक पीतलका तसला है। एक पलटा है। बस! कोठरी खोली, देखा, बीचों-बीच एक गद्दा बिछा है। धरती पर एक कोनेमें पत्र-पत्रिकाओंके ढेर, एक कोनेमें एक बड़ा सा मिट्टीका मटका धरा है। उसमें टेकके लिये एक ईंटा रखा है, उससे टिकाकर एक मिट्टीका दीपक! और वहां कुछ भी हो, अभाव-प्रभाव हो, किन्तु दीपकके नीचे काफी दूर तककी धरती यह कह रही थी कि 'यहां चाहे कुछ हो, चाहे नहीं, पर स्नेहकी कमी न मिलेगी। वह इतना भरपूर है कि—देखो, मैं माटी भी तर हूं।' और आंखें भर गईं। फिर देखा न गया.........

कमरेमें धूल भरी थी, क्योंकि बिना पल्लों (दरवाजों) की खिड़की थी। ऊपर भी खपरैला था। हम लोग मुकुलका हाथ पकड़े खड़े ही रह गए। तभी छतसे लौटकर निरालाजीने अपनी फींची हुई पहननेकी लुंगी लाकर गद्देपर बिछाकर कहा, "बैठो इस पर तुम लोग।" हम लोग भला कैसे बैठें?

तभी वे जोर देकर बोले, "कहता तो हूं, बैठो।"

हम लोग चुप-चाप बैठ गये। निरालाजीने लाकर खिचड़ी रख दी। दीदी उठ खड़ी हुई। निरालाजीने पूछा—"क्या है।"

दीदी—"थाली ले आऊँ।"

निरालाजी—"थालीका पता नहीं है।" विवश, हमलोग अखबार बिछाकर उसपर खिचड़ी बीनने लगे। निरालाजी पत्तल और कुल्हड़ लेने चले गये।

इस प्रकार तो कितना लिखा जाय, समझ नहीं पाती। क्या लिखूं, क्या नहीं? वे क्या हैं, लेखनीमें सामर्थ्य नहीं जो समझा सके। वह क्या हैं? कुछ एक उपाधि देकर, उनको बाँधना न्याय-संगत न होगा।

बस करूंगी।

निरालाजी : साहित्य-गगनके ज्योतिष्क

डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या

आधुनिक हिन्दी साहित्यके युगनेताओंमें अभी तक हमारे समक्ष मूर्त साहित्यादर्शके रूपमें जो महाकवि विराजमान हैं, उनमें निरालाजीका स्थान सबसे विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण है। यह सभी मानते हैं कि निरालाजी और प्रसादजी—इन दोनों कवियोंने हिन्दी काव्य-साहित्यमें आधुनिक दृष्टिकोण तथा प्रकाशभंगीकी नींव डाली थी। जयशंकरप्रसाद देह रक्षाकर अमर हो गये हैं, पर ईश्वरकी कृपासे निरालाजी अभी हमारे बीचमें हैं। अपनी कृतज्ञता प्रकट करनेके लिये हिन्दी संसारके मुख्य लेखकोंने निरालाजीके वर्धापन या बढ़ावन (अर्थात् सम्वर्धना) के लिये जो प्रयास किया है और कर रहे हैं, वह अत्यन्त समयोपयोगी है और एक नगण्य हिन्दी-प्रेमी के नाते मैं भी इस सम्वर्धनामें अपना हार्दिक साधुवाद प्रकट करता हूं।

निरालाजीकी रचनाओंसे गहरा परिचय होनेका अवसर मुझे नहीं मिला। एक तो मैं साहित्यसौधकी बुनियाद भाषाकी आलोचनामें नियुक्त मिट्टी खोदनेवाला मजदूर हूं, बेलदार हूं—साहित्य-सर्जना तथा आलोचना जिन वास्तुशिल्पियोंका इलाका है, उसमें मेरा अनधिकार-प्रवेश है। स्वभावसे मुझे वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक विचारसे अधिक प्रेम है, साहित्य-रसका आस्वादन करनेमें स्वभावतः मुझे कठिनाई होती है। इसलिये निरालाजीकी प्रतिभाका विवेचन मुझसे होना असम्भव-सा है। पर इनकी रचनाओंमेंसे जो छोटी-मोटी दस-पांच कविताएं मैंने देखनेका सौभाग्य प्राप्त किया, उनसे मुझे ऐसी प्रतीति हुई कि आपकी रचना शैलीसे आधुनिक हिन्दी साहित्य-परम्परामें एक अनोखी वस्तु आ गई है ; जो मेरी अपनी मातृभाषा बंगलामें कोई चार पीढ़ियोंके साहित्य-सेवकों द्वारा सुप्रतिष्ठित हो गई है। मध्य युगकी बंगला काव्यधाराके सामने आधुनिक बंगला काव्यधारामें जो नवीन भावनाएं, नवीन दृष्टि-कोण और उसकी प्रकाशिका नवीन भाषा प्रकट हो गई है, उसीकी झलक निराला-जीकी कृतिमें चमक रही है। गतानुगतिक शैलीसे परिचित प्राचीन पंथी कवि और लेखकोंके लिये' निरालाजीकी यह नवीनता दुर्बोध्य-सी अनुभूत हुई। जो गजदन्त खचित नूतन प्रासाद इन्होंने बनाया था, उसके सौन्दर्यकी सूक्ष्मता आग्रही पाठकोंको दिखानेके लिये टीका और टिप्पणीके रूपमें पथ प्रदर्शन करना पड़ा। अवस्थाके अनु-सार पाठकोंको उच्चतर क्षेत्रमें उठा लेनेके लिये इन्हें यह प्रयास करना पड़ा था और

इसकी आवश्यकता भी थी। इस तरह आजकलके हिंदी काव्य-रसिकोंमें नूतन दृष्टि-भंगीके कायम होनेका अवसर मिला।

"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी"—साहित्यिक विषयक भावना आज-कल विश्वमानवके लिये एक ही होती जा रही है—और इस विश्वजनीन मानवकी प्रकाश भूमि भी एक हुए बिना चलती नहीं। इसलिये जैसे आधुनिक युरोपियन साहित्यमें गये पांच सौ वर्षोंमें एक साधारण प्रकाशभंगी स्थापित एवं सर्वजन-ग्रहीत हो गई है, वैसे ही आधुनिक भारतके साहित्य क्षेत्रमें एक ही प्रकाश क्षेत्र अपेक्षित है। बंगला भाषा और साहित्यने इस मामलेमें आधुनिक युगमें और सब भारतीय भाषाओंके लियें रहनुमाई की है। निरालाजी तथा प्रसादजीने भी इस परिस्थितिको पूरी तरहसे समझ बंगला और हिन्दी इन दोनोंका एक अभिनव गंगा-यमुना संगम आधुनिक हिन्दी साहित्यके प्रयाग-संगममें ला दिया है।

निरालाजीसे साक्षात परिचित होनेके मुझे कई अवसर मिले थे, पर मेरे लिए यह दुखकी बात रही कि उनकी कृतियोंसे मेरा उपयुक्त परिचय न होनेके कारण मैं इससे साहित्यिक लाभ उठा न सका। सन १९३१ में जब कलकत्ता विश्वविद्यालयके सिनेट हालमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनका अधिवेशन हुआ था, उस समय मुझे निरालाजीका पहला दर्शन हुआ था। उस समय 'विशाल भारत' के सम्पादक श्री बनारसीदास चतुर्वेदीकी कृपासे शायद उनसे मेरा वार्तालाप हुआ था। उस समय मैंने निरालाजीको अच्छी तरहसे देखा था, क्योंकि पहले दर्शनकी स्मृति बहुत-कुछ म्लानसी पड़ गई थी। उनका सुडौल चेहरा, दाढ़ी-मूंछ सफाचट, लेकिन दीर्घ केश और प्रतिभामंडित मुखमंडल दर्शनार्थीके लिये मानों चिरस्मरणीय है। बहुत दिनों से उनसे दूसरी बार भेंट होनेका संयोग नहीं हुआ। पर हिन्दी साहित्यगगनके इस ज्योतिष्कको किरणें हिन्दी साहित्यको उद्भासित कर रही हैं।

कविवर दीर्घायु हों, शतायु हों, निरामय हों—यही हमारी प्रार्थना है।

●

"हम निरालाजी पर क्या लिखें ? जिस दिशामें आगे बढ़नेके लिये हमारी आत्मा सिहर उठी थी, वे उसी ओर आगे बढ़े और उन्होंने मनुष्यताके नये 'माइल-स्टोन' स्थापित किये !"

—महाकविके एक आत्मीय मित्र।

निरालाजीकी निराली बातें

पं० गाङ्गेय नरोत्तम शास्त्री

बादलका हृदय लिये, अपनोंमें 'अपनापन' बिखेरनेवाले, हिन्दीके तरुण तपस्वी, वरणीय 'बरुआ' जीके अनुरोध पर अनेक झंझटोंसे व्यतिव्यस्त जीवनके कुछ क्षण निकालकर, यह लेखनी आज 'निरालाजीकी निराली बातें' लिखने चली है! दो युग पहले···उस अतीत जीवनकी स्मृति! उस स्मृति-सागरमें भी उन लहरोंको खोजना जो श्री निरालाजीके जीवनसे, और हमारे जीवनसे टकरायीं। प्रायः २८ वर्ष पहले सम्वत् १९८२-८३ (सन् १९२४-२५) से पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जीसे हमारा स्नेह-सम्बन्ध है। समय-समय पर उनके समागमकी, स्नेहमय सम्मेलनकी वे मधुर घड़ियां! 'जिन घड़ियोंमें बिना जाने ही, बीत गयीं घड़ियां कितनीं?' इस मानस-पट पर निराला-सम्पर्कमें चित्रित 'चिन्मय' चपलाओंकी अनेक रुचिर छवियां हैं, निराला—बिम्बके अनेक प्रतिबिम्ब हैं। यहां उनमेंसे केवल कुछ महत्वपूर्ण तथ्योंका, तथा विभिन्न नगरोंमें घटित घटनाओंका संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया जाता है।

मतवाला-मण्डलमें

मध्य कलकत्ताकी शङ्करघोष लेनके एक छोटेसे मकानमें कई 'मतवाले' रहते थे। सबके सब हिन्दी-सेवा-सुधा पानसे मस्त! इन लोगोंने राष्ट्रभाषा हिन्दीकी सेवाके लिये, स्वदेशकी सेवाके लिये, स्व-संस्कृतिकी सेवाके लिये, अन्‌रजिष्टर्ड···अन् लिमिटेड 'मतवाला-मण्डल' की स्थापनाकी और लोगोंको 'राग-विराग भरा प्याला' पिलानेके लिये 'मतवाला' पत्र निकाला। हमारे 'निराला' जी इस मण्डलके 'कविता-कमण्डल धर' अखण्ड-लेखन-योगाभ्यासी आदरणीय औघड़ाचार्य थे। मण्डलके 'पीठ-स्थविर' थे—श्री महादेवप्रसाद सेठ, जिन्हें 'हिन्दीकी गुदड़ीके छिपे हीरे' इन शब्दोंसे याद करते थे, चिर प्राचीन, फिर भी नित्य-नवीन 'नवीन' जी जैसे कविवर। मण्डलकी 'रीढ़' थे···मुंशी-मिजाज़ मुंशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव, जो सवेरेसे रात तक श्रीगणेशजीकी तरह दृढ़ आसन लगाकर हिन्दीके क्षेत्रको अपने पसीनेसे 'तर' करते थे। मण्डलके प्रकाश और 'मधुर हास' थे—हिन्दी-भूषण आचार्य शिवपूजन सहाय, जिन्हें उन दिनों हम लोग प्रेमसे 'सहायजी' कहा करते थे। इस मण्डलमें पीछेसे प्रवेश किया सामिनिवेश 'उग्र' जीने। उन दिनों

निरालाजीके मुक्त छन्दके गीत और उग्रजीकी विचित्र 'चर्चामय कहानियां' कथा-कहानियोंके विषय थे। अपने ढङ्गके अद्वितीय साहित्यकार अक्खड़ 'उग्र' जी और फक्कड़ निरालाजी 'मतवाला' के ताण्डवकारीके खप्पड़की ज्योतिसे हिन्दी-संसारमें विशेष प्रकाशित हुए। ध्यान देनेकी बात है कि ऐसे अनेक साधकोंके निकट सम्पर्कमें रहते हुए निरालाजी कटु आलोचनाओंका, विकट संकटोंका सामना करते हुए, हिन्दी-सेवामें अग्रसर हो रहे थे। आर्थिक संकट तो लगा ही रहता था। एक दिन अचानक निरालाजी हमारे यहां आये, बोले, "शास्त्रीजी! आपसे एक जरूरी काम है।" कहिये! कहने लगे—"पिंजरापोलमें १५०-२०० रु० की 'मैनेज़र' की जगह खाली है। आपका उन विशिष्ठ लोगोंसे परिचय है, आप कह दीजिये तो काम हो जाय।" हमने कहा "कहनेको हम आपके लिये अच्छी तरह कह देंगे। पर आपको गौओं-भैंसों-अन्य पशुओंका ज्ञान और दुग्धालय (डेयरीफार्म) संचालनका नैपुण्य किस पुण्यसे कैसे-कहांसे मिल जायेगा?" बोले, "यह सब मैंने प्राप्त कर लिया है। इस विषयकी अनेक पुस्तकें पढ़ी हैं।" दूसरे दिन आप मोटी-मोटी अनेक अंग्रेजीकी पुस्तकें ले आये और बड़ी देर तक प्रवचन कर हमें अपना निराला नूतन ज्ञान मान लेनेके लिये विवश किया! इसके बाद हमने उनके लिये पूरी चेष्टाकी; पर सफलता नहीं मिली। देखिये? हिन्दीके एक महान कलाकारको जीवन-संघर्षके लिये क्या-क्या करनेकी इच्छा न हुई। वास्तवमें उन दिनों अनेक संघर्षोंका सामना करते हुये कुछ थोड़ेसे लोग हिन्दीकी सेवामें जी-जानसे जुटे हुए थे। जिनमें तपस्वी निरालाजी अपने निरालेपनमें 'निराला' ही रहे, निरी 'आला' सुख-सामग्रीसे, साधनोंसे शून्य आला ही रहे। "दुखवा मैं कासों कहूं मोरी सजनी!"

* * * * *

हास्यरसावतार पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी निरालाजीके छन्दोंको 'रबड़छन्द' कहकर लोगोंको हंसाया करते थे। इन लोगोंकी तरफ इशारा करके कभी-कभी हमसे पूछते, "शास्त्रीजी, आजकल 'वर्णशङ्कर घोष लेन' वालोंका क्या हाल है?" खूब हंसी-दिल्लगी रहती। इन्हीं दिनों 'निराला' जी को लेकर महीनों साहित्यिक वितण्डावाद चला। ऐसे अनेक संघर्षोंमें 'शब्दवेधी' बाणोंकी मार सीने पर सहते हुये, बिना सहमें, निरालाजी अपने निराले पथ पर चलते रहे। चलते-चलते अब उन्हें सिद्धि प्राप्त हो गयी है; सब विरोध प्रायः शान्त हो गया है। 'प्रशान्त महासागर' की तरह निरालाका कवि स्वयम् भी अब अपने अन्तरतरमें विराट् शान्त तत्त्वका अनुभव कर रहा है।

काव्यकी पहली पुस्तक

पहले-पहल निरालाजीकी कविताओंकी पुस्तक 'अनामिका' नामसे प्रकाशित हुई। बड़े प्रेमसे स्वयम् आकर हमें उसकी एक प्रति भेंट की, हमने कहा—"यह 'वदतो व्याघात' न्याय है, आप हमें 'अनामिका'-नामिका पुस्तक दे रहे हैं।" खूब हंसे।

"पुरा कवीनां गणना प्रसङ्गे कनिष्ठकाऽधिष्ठित कालिदासः। अद्यापितत्तुल्य कवे रभावात् 'अनामिका' सार्थतरा बभूव॥"

इस पद्य पर भी खूब चर्चा हुई। श्री निरालाजी कवि हैं, समालोचक हैं, कहानी लेखक हैं, गायक हैं, उपन्यासकार हैं, पर प्रमुख रूपमें निरालाजी कवि ही हैं। कलकत्ताके 'लालबाजार थाने' की तरह विशाल निराला-शरीरमें सर्वाधिक शक्तिशाली स्थान कंट्रोल-रूम निराला काव्य-मस्तिष्क ही है।

निरालाजीकी कविताएं और छन्द

मतवालाके प्रकाशनके प्रारम्भिक दिनोंमें कुछ कविताएं इतनी अच्छी···इतनी सुन्दर निकलीं, जिनसे निरालाकी ख्यातिको चादरमें चार चांद लग गये और सहृदयोंके हृदय गद्‌गद हो गये। भारतीय साहित्यमें बहुत प्राचीन कालसे··· वैदिक युगसे···'तुम और मैं' पर 'द्यौ रहं पृथिवी त्वम्' 'सात्वम् अमोह मस्मि' आदि सुन्दर कविताएं लिखी गयी हैं, अब भी लिखी जा रही हैं, आगे भी लिखी जायेंगी। पर उन दिनों··निरालाजीकी एक निराली कविता इसी विषय पर 'तुम तुङ्ग हिमालय शृङ्ग, और मैं चञ्चल गति सुरसरिता' वाली ऐसी निकली जो कविता-जगतमें फिल्ममें सविता देवीकी तरह बहुत चमकी! खूब आगे बढ़ी। रसिकोंकी आंखों पर चढ़ी। और विशेष लोकप्रिय हुई। शृङ्गार, करुण, वात्सल्य रसके साथ-साथ 'वीर रस' का वर्णन भी निरालाजी खूब करते हैं। 'मिर्जा राजा जयसिंहके नाम शिवाजीके पत्र'में और 'जागो' कवितामें निरालाजीकी देशभक्ति-पूर्ण प्रतिभा ने ऐसे पङ्ख मारे हैं, ऐसी ऊंची उड़ानें भरी हैं, जिनसे काव्य-मर्मज्ञोंके मन पर दक्ष-यज्ञमें वीरभद्रकी तरह 'वीर रस' गर्जन करने लगता है। कायरोंमें भी जोश उमड़ने लगता है। शौर्यके 'पारावार' का पारा चढ़ने लगता है। निरालाजीकी मधुर रसकी एक मनोहर कविता प्रकाशित हुई थी—'जूहीकी कली'। लम्बी, रसीली, सुकुमार, मुक्ताऽलङ्कार, व्यङ्ग्य-झंकृत-चरण, लोचन-वशीकरण, स्नेहमयी, उदार उन्नत उरधारिणी, आतिथ्यकारिणी, परम हृदयाल्हादिनी थी वह। उस कविताको लेकर कुछ लिखा-पढ़ी भी हुई। एक साहित्यिक चर्चामें उस पर हमारा मत पूछा गया। हमने यह श्लोक सुना दिया—

कपूर वर्ति रवि लोचन ताप हन्त्री।
फुल्लाम्बुज—स्त्रगिव कण्ठ-सुखैक-हेतुः ॥
चेत श्चमत्कृति-पदं कवितेव रम्या।
नम्या नरीभि रमरीव हि सा विरेजे ॥

* * *

पद्यके बन्धनसे मुक्त होकर लिखनेमें कुछ विशेष सुविधा होती ही है। इस लिये ऐसे 'बन्ध' से मोक्ष प्राप्त छन्दोंको निरालाजी और स्वच्छन्द शास्त्री लोग 'मुक्तछन्द' कहते हैं। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, हास्यरसावतार पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी आदिकी भाषामें इसे 'रबड़ छन्द', केंचुआ छन्द, निराला छन्द, मन-मानाछन्द कहा जाता रहा है।

हम इसे भारतीय साहित्यमें पूर्वसे ही प्रचलित 'वृत्तगन्धि गद्य' समझते हैं! सर्वतन्त्र स्वतन्त्र, महामहोपाध्याय विश्वनाथ कृतीने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'साहित्य दर्पण' में इस 'वृत्तगन्धि' गद्यका लक्षण लिखा है। वास्तवमें वह 'वृत' नहीं, वृत्तकी गन्धवाला (कहीं-कहीं इसमें पद्योंके टुकड़े : पूरेके पूरे चरण आजाते हैं, इसलिये) 'वृत्तगन्धी छन्द' है। यह छन्द निरालाजीके कन्धे पर हाथ धरकर कुछ दिन चला; पर ज्यादा नहीं चल सका! बहुत कम लोग सामने आये, इसे कन्धे पर बैठाकर आगे बढ़ानेके लिये। मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे भी ऐसा मालूम पड़ता है कि पूर्ण चरण न होनेके कारण ही यह जबान पर ठीक-ठीक चिरकाल तक नहीं चलता। (याद नहीं रहता।) यह सत्य है—यह समुचित है, यह प्रत्यक्ष है, कि बन्धसे 'मुक्ति' पाकर भी यह बेचारा स्वच्छन्द छन्द भारतवर्षमें योग्य 'चरण' के अभावके कारण ही विशेष 'विचरण' नहीं कर सका।

'मौजी' और 'फौजी'

'मतवाला' और 'निराला'की देखा-देखी उन दिनों एक हिन्दी साप्ताहिक 'मौजी' और कवि 'फौजी' प्रकट हुए। खूब नोंक-झोंक रही : निरालाजी भी अनेक बौछारें सहते, अनेक बौछारें मारते मैदानमें डटे रहे। 'मौजी' की मौज और 'फौजी' की कविता-फौजसे कलकत्तेके फुटपाथ छा गये, मोदियोंकी दूकानें पट गयीं। आफिसोंकी टोकरियोंके स्थान भर गये! कुछ महीनों बाद 'मौजी' मौजकी सनकमें और 'फौजी' चीना-फौजकी प्यारी पिनकमें लीन होकर 'समाधिस्थ' हो गये।

निरालाजी परम प्रेमी हैं, बड़े मिलन सार हैं, उदार हैं, पर कुलिश-कठोर भी

हैं। जिसके पीछे पड़ जायें, जल्दी उनका पिण्ड नहीं छोड़ें। बड़े-बड़ोंको उन्होंने झकझोरा है। श्रीहरिकृष्ण जौहर साहित्याऽलङ्कारके साथ सप्ताहों तक वह लेख-युद्ध चलाते रहे। करुणा और दानकी प्रवृत्ति भी निरालाजीमें विशेष रूपसे है। युक्त प्रदेशकी सरकारसे मिली हुई सब रकम मुंशी नवजादिकलाल श्रीवास्तवकी असहाय विधवा पत्नीको दे देना दयामय मुनिजनोंकी सहज त्यागमयी वृत्तिका प्रतीक है। इस प्रकार उज्जवल-गुण किरणोंको विकीर्ण करनेवाला यह निराला 'कवि-हीरक' हिन्दी-संसार की, हिन्द राष्ट्रकी शोभा बढ़ा रहा है।

काशीमें

सम्पादकाचार्य पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयीके सभापतित्वमें काशीमें होनेवाले हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अवसर पर कई वर्षों बाद बन्धुवर निरालाजीसे मिलने पर अमन्द आनन्द-समुद्र हृदयमें हिलोरें लेने लगा: मञ्च पर हम और निरालाजी आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल और वाजपेयीजीके पास ही बैठे थे। रातका समय था, कुछ मिनटोंके लिये बिजली खराब होनेके कारण अन्धकार हो गया। दर्शक लोग उठकर जाने लगे। महिला-गैलरीमें भारी बावैला मच गया। मञ्च पर भी कुछ लोग खड़े हो गये। लेकिन उसी समय निरालाजीने अपना 'तुलसीदास' पूरे गर्जनके साथ शुरू कर दिया, थोड़ी देरमें फिर प्रकाश हो गया। निरालाजी फिर भी मञ्चपर खड़े कविता-पाठ करते रहे। इसपर आचार्य शुक्लने हमसे कहा, "शास्त्रीजी, निरालाजीको कहिये—अब 'छायावाद' हट गया है, अन्धकार दूर हो गया है, प्रकाशवाद आ गया है, अब वे बैठ जायें।" शुक्लजीके इस व्यङ्गसे खूब हंसी हुई! निरालाजीको बैठाते हुये हमने कहा, "शुक्लजी, यह महत्ता तो 'छायावाद' की ही थी, कि उसके आते ही छोटे-बड़े सब खड़े होकर उसका अभिवादन करने लगे।"

इसके कई वर्ष बाद 'विक्रम-द्विसहस्राब्दी-उत्सव' पर काशीमें ही निरालाजीसे फिर स्निग्ध सम्मेलन हुआ। श्री सम्बत् २००० का यह काशीका उत्सव भारतवर्ष भरमें अपने ढंगका अद्वितीय रहा। हिन्दीके सुप्रसिद्ध साहित्यसेवी पं० सीताराम चतुर्वेदी एम०ए०, श्री बेढबजी, श्री बेधड़कजी, पं० विश्वनाथ मिश्र आदि महानुभावोंने तीन दिन व्यापी इसका भव्य आयोजन किया था। बाहरसे आनेवाले सुकवियों और साहित्यसेवियोंके निवास, भोजन आदिका प्रबन्ध अपनेही यहां किया गया था। भोजन-मन्त्री थे हमारे प्रिय मित्र, पुराने हिन्दी हितैषी, स्वर्गीय बाबू बैजनाथ केड़िया। हम लोगोंने यथाशक्ति समागत, सरस्वतीके सेवक, साहित्यिक-'राजहंसों'

की सेवा की। कई दिनों तक स्नेह, आनन्द, अनुराग की वर्षा होती रही। इस अवसर पर 'निरालाजी' भी पधारे थे। उनके साथ भी घण्टों...पहरों तक साहित्यिक चर्चाओंका, कविता-पाठोंका, 'नूतन छान्दोग्य' उपनिषदके प्रवचनोंका क्रम जारी रहता था। रुपयेकी चर्चा और चिन्तासे दूर...मधुर ज्ञानके अनुशीलनके वे 'क्षण' आनन्दके कितने समीप थे! उन्हीं दिनों एकबार प्रियबन्धु प्राध्यापक पं० नन्ददुलारे वाजपेयीके निवास-स्थान दुर्गाकुण्ड पर हम उनसे मिलने गये। बड़े तपाकसे बोले—"शास्त्रीजी! आपके हाथमें, 'गरमागरम' एक प्रकाशन अब आने ही वाला है। बस! तुरन्त।" "क्या?"—"कुल्लीभाट। मैंने बड़ी मिहनतसे 'कुल्लीभाट' को पूरा किया है, अब लखनऊमें जाते ही इसे मुद्रित कराना है।" हमारी अन्तरात्माको प्रतीत हुआ, उनका निज ग्रन्थोंके मुद्रण और प्रकाशनका वह उत्साह! वह अभाव! वह स्वभाव! और वह काव्य-प्रभाव! श्री नन्ददुलारेजीके दुलार-भरे हृदय और 'घर' में जो प्रेम-पूर्ण, आत्म-समर्पणमय आतिथ्य निरालाजी को मिला, उससे वे गद्गद हो रहे थे। परम प्रेमी, भक्तराज 'विदुर' और उनकी पत्नीके द्वारा स्नेह-विभोर होकर प्रदत्त अलोने साग और केलेके छूछे छिलके स्वादसे चबा-चबाकर खानेमें भगवान श्रीकृष्णको भी निरालाजी-जैसा आनन्द आया था कि नहीं, मालूम नहीं......।

लखनऊ में

गङ्गा-तीर, और यमुना-तीरकी तरह गोमती-तीर पर भी टहलनेका बड़ा शौक निरालाजीको है। उन्होंने जीवनके बहुमूल्य कई वर्ष इस पुरातन 'लक्ष्मणपुर', नूतन लखनऊ, अभिनव (अपटुडेट) प्रदेशीय राजधानीमें बिताये हैं। इसके राग-रंग, इसके साहित्यिक सङ्ग, इसके अङ्ग-प्रत्यङ्गका पूरा ज्ञान निरालाजीको है। एक साहित्यिक यात्राके सिलसिलेमें 'अपने राम' भी निरालाजीसे मिलने लखनऊ पहुंचे। 'ला पता' का पता लगाया। एक गन्दी गलीके छोटेसे मकानमें, तिलचिट्टों-छिपकलियों-मकड़ियोंसे भरे हुए, जीर्ण, शीर्ण, अस्तव्यस्त रखी हुई वस्तुओंसे अशोभित कमरेमें 'निरालाजी' चटाईको शोभित कर रहे थे। देखते ही उठ कर बड़े प्रेमसे गले मिले। बैठाया। बोले—"आप बड़े मौकेसे आये। मैं बड़ी देरसे 'अलकापुरी' की स्त्रियोंके संबन्धमें सोच रहा हूं। कैसे वहां की रमणियां एक ही समयमें छओं ऋतुओंके पुष्पोंका उपभोग करती हैं?" महाकवि कालिदास के 'मेघदूत' के एक पद्य "हस्ते लीला-कमल मलके" पर एक घण्टेसे अधिक तक

आप अपना ऊहापोहमय विचित्र प्रवचन हमें सुनाते रहे, फिर हमारी राय पूछी। हमने कहा, "महाराज ! आपने तो इसमें अभी कुछ दिन ही बिताये हैं, पर टीकाकारोंके दादागुरु 'बाबा मल्लिनाथ' कहे गये हैं—'माघे मेघे गतं वयः'। इसलिये बस करो अब।" बोले, "आपको एक काम करना होगा, बाहर चलिये। यहांका यही रिवाज है, हमारा यही कायदा है।" घरसे बाहर आकर हमें एक विश्रामगृह (रेस्टोरेण्ट) में ले आकर कहने लगे, "इस चीजका शौक करिये, उस चीजका शौक करिये। हम मेहमानोंकी ऐसे ही यहाँ खातिरदारी करते हैं।" हमने कहा, "हम तो आपके प्रेमके भूखे हैं, इन चीजोंकी कोई दरकार नहीं, हमारा 'नियम' भी आप जानते हैं।" उनकी प्रेम-भरी भावनाको पूर्ण करनेके विचारसे कुछ फल हमने स्वीकार किये। इसके बाद 'अमीनाबाद पार्क' और अन्य स्थानोंमें घुमाने हमें ले गये। लखनऊ-निवासमें उनके साथ अनेक साहित्य-चर्चाएं हुईं। सौन्दर्योपासना और प्रकृति-परिचर्या निरालाजीके मस्त जीवनकी खुराक है। यह भी हमने देखा—निरालाजीकी मस्ती किसी सच्चे प्रेमीसे मिलकर दुगुनी-चौगुनी हो जाती है। वास्तवमें 'निरालाजी' यह दावेके साथ कह सकते हैं कि—

"जो फूल खिला बागमें, वह पैमाना है मेरा।
कहते हैं जिसे 'अब्र' वह मैखाना है मेरा॥"

'प्रात'-सुन्दरीके उपासक कोमलकान्त पदावलीके गायक किसीके सुकुमार, सलोने, आकर्षक 'जनानेपन' पर एकबार निरालाजी ऐसे लुभाये, कि उसपर कई लेख लिख डाले, और उसके स्त्री—लिङ्ग-प्रेमको, कुछ-कुछ…'स्त्रीत्व' को सिद्ध कर दिया। पुल्लिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग-मर्मज्ञ, प्रचण्ड पौरुषके प्रतीक, पुरुष-पुङ्गव 'निराला'जीके उस साहित्यिक 'लिङ्ग-पुराण' के कई अध्याय 'माधुरी' में प्रकाशित हो चुके हैं। मधुर वीणा-झङ्कारके साथ-साथ वज्र निर्घोष करनेवाली निरालाजीकी ललित लेखनीका यह चमत्कार है, जिसे देखकर—"विकसे सन्त-सरोजवन, हरषे लोचन भृङ्ग।"

अबोहर साहित्य-सम्मेलनमें

श्रीयुत डा० अमरनाथ झाके सभापतित्वमें होनेवाले अबोहर हिन्दी-साहित्य सम्मेलनमें सम्मिलित होनेके लिये तात्कालिक सभापति माननीय श्रीसम्पूर्णानन्दजी के साथ, पहले तय हुई सलाहके अनुसार, काशीसे हम दोनों एक डब्बेमें सवार होकर साथ-साथ अबोहर पहुंचे। वहाँ राजर्षि टण्डनजी, डा० झा, काका कालेलकर, पं० माखनलाल चतुर्वेदी, पं० नरदेव शास्त्री, श्री निरालाजी, आत्रेयजी आदि दिग्गज

साहित्य-सेवियोंके दर्शन हुए। निरालाजीने अपनी नव-निर्मित गूढ़व्यञ्जना-विभूषित हास्यरसकी पुटसे सम्पुटित, 'कुकुरमुत्ता' नामक कवितासे वहां धूम मचा रखी थी। मजा यह, कि डेरे-डेरेमें घुसकर जने-जनेको आप वह कविता सुना रहे थे। उस समय बड़ा आनन्द आया, जब आपने आचार्य काका कालेलकरके कमरेमें घुसकर ऊंचे स्वरसे विशेष रूपसे उन्हें यह 'कुकुरमुत्ता' दिखाया, सुनाया और समझाया। वहां निरालाजीमें हमने एक विशेष परिवर्तन पाया। कवि-सम्मेलन उन्हींके सभापतित्वमें हुआ। सानन्द, स-सम्मान साहित्य-सेवियोंका प्रेम निरालाजीने वहां पाया। बिदा होनेके समय हृदय भर आया! जिह्वा पर शब्द नहीं आये। महाकवि 'बोधा' के अनुसार—'उरते कढ़ि आवैं गरेते फिरैं, मनकी मनहीमें सिरैबो करैं' वाली हालत थी।

निरालाजीकी रहन-सहन

साहित्य साधनाके लिये जीवन उत्सर्ग करनेवाले 'निराला' जी जैसे लोग 'विधि-निषेध' से परे ही समझे जाने चाहियें! 'तन्मयता' की विशेष अवस्थाके कारण ही 'संन्यास' में विधि-निषेध है। इसीलिये भक्त और ज्ञानी दोनोंकी पराकाष्ठाका वर्णन 'जड़ोन्मत्त-पिशाचवत्' से किया है। और कवियोंमें तो महाकवि भवभूति, गोस्वामी तुलसीदासजी आदि कुछ लोगोंको छोड़कर प्रायः सबके सब निरकुंश, रङ्गीन मिजाज, मनमानी, घरजानी करनेवाले मनमौजी हुए हैं! इसी तरह कविवर 'निराला' जी भी खाने-पीनेमें, बैठने-उठनेमें, चाल-ढालमें मनमौजी हैं। कभी तम्बा, कभी धोती, कभी पाजामा, कभी अंगोछा, जो लिया, सो लिया। कभी कड़ाह-प्रसाद! कभी महाप्रसाद! 'कभी घी घना, कभी सूखा चना। कभी वह भी मना!' कभी लहरमें हैं, कभी समाधिस्थ हैं। कभी मौन मनकी 'मधुरिमा को जगानेके लिये' मुनियोंका ध्यान करते हैं--

"वेद-शास्त्र-सर्मज्ञ, तपोनिधि, अनुशीलन-पर, प्रिय विज्ञान।
अरुण···अरुण, करुणामय लोचन, प्रमुदित वे कर 'सोम-पान'॥"

पूर्णाहुति

तीर्थराज प्रयागके पावन त्रिवेणी-तीर पर विश्रान्त जीवन व्यतीत करनेवाले 'निराला' जी आजकल तो विशेषकर अन्तरङ्ग-'रङ्गमञ्च' पर बादल-गान गाते हुए 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' को रिझाते हुए, ब्रह्म-'सूत्रधार' का काम कर रहे हैं। इस विशेष 'भूमिका' में वे कभी स्वामी विवेकानन्दसे, कभी जगद्गुरु शङ्कराचार्यसे,

कभी महाकवि शेक्सपियरसे, कभी शैली और कीट्ससे, कभी गोस्वामी तुलसीदाससे, कभी महाकवि कालिदास और कबीरदाससे बातें करने लगते हैं। आनन्दका स्रोत उमड़ पड़ता है। कुछ लोग इससे निरालाजीको अर्धविक्षिप्त समझते हैं। पर निरालाजी तो अब आलादर्जे पर पहुंचकर इस दुरङ्गी दुनियांसे दूर 'क्षितिज' देशमें प्रवेश कर, शेष कर्तव्य पर, अपने अन्तरङ्ग साथियोंके साथ...अपने प्राणोंके साथ परामर्श कर रहे हैं। अच्छा! तो परम प्रेमी! प्राणोंके प्राण! यह सादर अभिनन्दन है!

फिर फिर मिलो प्रणयके पंछी! जुग जुग बरसो! बन 'घन-सार'
'संस्कृति' के ध्वज! फिर फिर फहरो! देते रहो! प्यारका तार॥

निराला: एक बवण्डर, एक इन्सान!

वर्चस्वी पत्रकार, श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

कवि निराला एक शब्दमें बवण्डर है, पर यह बवण्डर उद्धत भी है, करुण भी। यहीं निराला एक इन्सान!

बवण्डर हमारे व्यवस्थित जीवनमें धूल और अस्तव्यस्तता भरता है। वह कुसुमोंकी क्यारीको झंझोड़ता, वृक्षोंको उखाड़ फेंकता और राह चलतोंको थपेड़े मारकर आक्रान्त करता है। पर आश्चर्य है कि उसमें एक सौन्दर्य है और मैं कहता हूं कि निरालामें भी यही सौन्दर्य है।

महात्मा गांधीने इन्दौरमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति पदसे दिए अपने भाषणमें कहा कि मैं यह सोचा करता हूं कि हमारी राष्ट्र भाषामें रवीन्द्रनाथ जैसे कविने क्यों जन्म नहीं लिया?

निरालाने यह भाषण पढ़ा कि वे भिन्ना उठे। अब वे गांधीजीसे भिड़नेको बेचैन! पहुंचे और महादेव भाईसे बोले—राजनीतिज्ञ गांधीसे मिलनेकी मुझे जरूरत नहीं, पर मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापतिसे मिलना चाहता हूं।

सुना है, महादेव भाईने पूछा—आप गांधीजीसे क्या बात पूछना चाहते हैं?

निरालाजी बोले—मैं उनसे पूछना चाहता हूं कि तुमने महाकवि निरालाका साहित्य पढ़ा! इस पर वे कहें कि नहीं, तो मैं कहूंगा कि तुम अभागे हो। और

वे कहें हां, तो मेरा प्रश्न होगा कि पढ़ा तो है, पर समझा भी है ? इस पर वे कहें, नहीं, तो मैं कहूंगा कि पहले उसे समझिये तब हिन्दी पर कुछ कहिये। और वे कहें कि हां समझा है, तो मैं कहूंगा कि तब आपका-मेरा मतभेद है।

इस कल्पित इण्टरव्यूसे महादेव भाईकी महान खोपड़ी चकराई, फिर भी उन्होंने निरालाजीको गांधीजीसे मिलाया, पर समय इतना कम था कि बातें ज्यादा नहीं जमीं !

यह है बवण्डर निराला, पर क्या वह बवन्डर ही है ?

(२)

कई दिनसे निरालाजीकी जेबमें एक पैसा नहीं और इस समय वे भूखसे विह्वल— घरसे उठे कि आटा-दाल लायें, पर दूकानदारने पुराने रुपयोंका तकाजा ठोक दिया। वहांसे भिन्नाकर चले कि चलो पान ही खालें, पर देखते ही पनवाड़ीका तकाजा आ पड़ा और यों रोम-रोममें आलपोन-सी चुभाये निरालाजी लौटे।

इन दोनों अभागे दूकानदारोंको भला क्या पता कि महादानी कर्ण ही रूप बदलकर पुण्यदान करने उनके द्वार आया था, पर जिस देशके धर्मवीरोंने अपने दधीचियोंको नहीं पहचाना, वहाँ इन अशिक्षित दूकानदारोंकी क्या शिकायत !

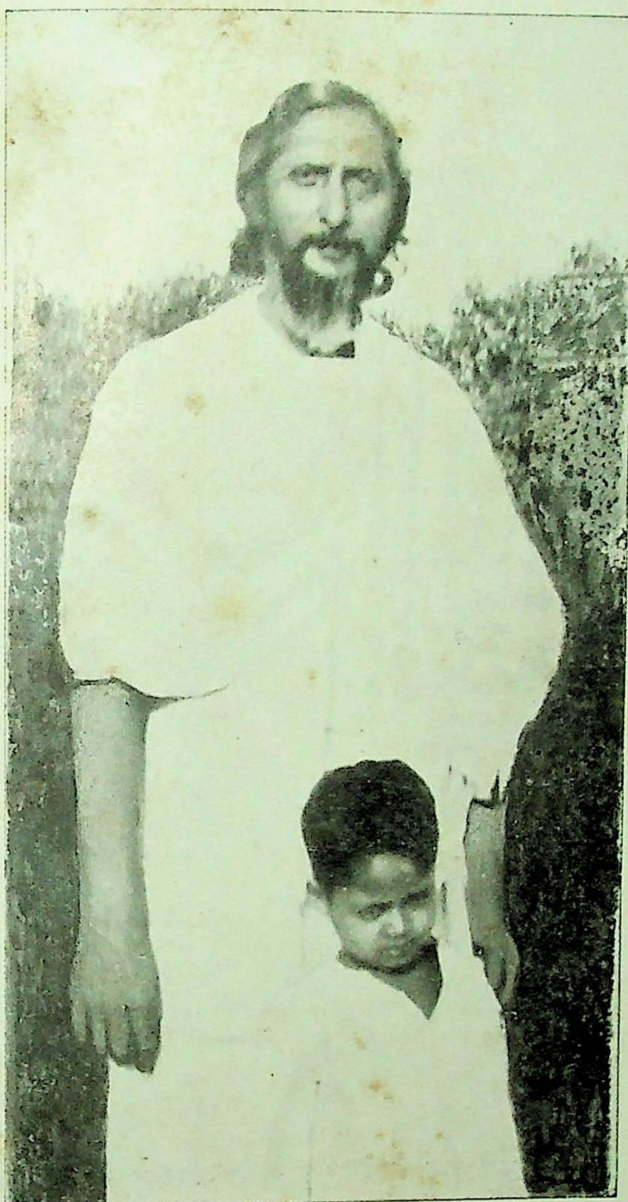
निरालाजी चले कि चले-ही-चले और मीलों चलकर रुके। कहाँ प्रयागका दारागंज और कहां लीडर-प्रेस ! सन्ध्या हो चली थी, फिर भी पुस्तकोंके हिसाबमें रुपये मिल गये। रुपये क्या कोई दो-चार ? नहीं, हैदराबादके निजामकी रत्न-राशिसे भी अधिक, पूरे १०४) रुपये !

अब निरालाजी एक इक्केमें और दिमाग सातवें आसमान पर। क्या वाजिद अली शाह कभी इस शानसे लखनऊमें निकला होगा ! निरालाजी इक्केमें, और शेखचिल्ली उनके भीतर : २४ रुपये पड़चूनियेको देंगे, ६ रुपये पनवाड़ीको, चार सिलायेंगे पाजामें और चार कुरते, कल सारे दिन धुत रहेंगे और मुर्गा उड़ायेंगे।

"बेटा, इस भूखी भिखारिणीको कुछ दे।" फुटपाथ पर पेड़के नीचे बैठी एक बुढ़ियाकी करुण वाणीने निरालाको चौंका दिया। वे इक्का रोककर उतरे और उकडू हो, बुढ़ियाके सामने बैठ गये। बुढ़ियाको उन्होंने पूरी तरह देखा कि वे रसलीन।

"माँ !" उनके कण्ठसे फूट पड़ा। रामने भी कौशल्याको कभी इतनी ममतासे न पुकारा होगा।

"हां, बेटा !" बुढ़ियाके कण्ठसे फूट पड़ा। यशोदाने भी कृष्णको कभी इतनी ममतासे न दुलारा होगा।



[चित्र : श्री रा० प्र० यादव

इसी हृदयग्राही रूपसे आनन्दित होकर एक अमरीकी पत्रकार-महिलाने आपको "अपोलो का पुत्र" कहा था !



साहित्यकार संसद्, रसूलाबाद्में

श्रीमती महादेवी वर्मा, महाकवि निरालाजी, पं० इलाचंद्र जोशी

खड़े हुए—श्रीवरुआ, श्रीगंगाप्रसाद पांडेय, श्रीजितेन्द्र सिंह, श्रीहरिमोहनदास टंडन

[चित्र : ८ मई ५३

पर तभी निरालाका मोम जमकर इस्पात हो गया और मुक्केबाजकी तरह, पंजोंके सहारे जरा उचक, गरमाए गलेसे उन्होंने कहा—"मूर्ख, महाकवि निराला की माँ होकर भिक्षा मांगती है ?"

बुढ़िया अवाक, भौंचक !

—"गला दबाकर तुझे मार डालूगां !"

बुढ़िया अब भयभीत, पर उसकी विह्वलतासे निरालाका इस्पात पिघलकर फिर ज्योंका त्यों मोम। एक रुपया जेबसे निकाल कर बोले—"अच्छा, मैं तुझे एक रुपया दूं, तो तू कब तक भीख नहीं माँगेगी ?"

"कल तक।" बुढ़ियाने कहा। चार रुपये उसमें मिलाकर निरालाने पूछा—"और अब ?" बुढ़ियाने कहा—"सात दिन।"

दस-दस रुपयेके दो नोट जेबसे निकालकर उन्होंने पूछा—"और अब ?"

बुढ़ियाने २५ रुपयों पर नजर डाली और अब पूरी आंखों अपने इस यजमान को घूरा। निरालाजी पंजोंके बल अभी तक उकड़ू टिके थे। पायजामा फटा, कुरता मैला, हजामत बढ़ी और विशाल देह। बुढ़ियाने मान लिया : यह पागल है, या फिर नशेवाज।

बुढ़ियाने मान लिया, पर निरालाजी तो यों मानने वाले नहीं। वे रुपये बढ़ाते रहे और बुढ़िया पीछा छुड़ानेको समय। अब सौ रुपये निरालाजीके हाथ पर थे और बुढ़ियाका उत्तर था—"कभी नहीं !"

सब रुपये निरालाजीने बुढ़ियाको दे दिये और आकर इक्केमें बैठ गये। बैठे कि वे जागे—'इस तांगे वालेको एक रुपया कहाँसे दूंगा ?' ओह, इस समय भी उन्हें अपनी भूख याद नहीं आई। इक्का महामान्य महादेवीजीके द्वार रुका। यहां निरालाका रिजर्व-बैंक है। बातें सुनाईं, १० रुपये लिए और घर आए!

क्या उस रात सोते समय निरालाने इस घटनाका ध्यान किया ? कौन अभागा है, जो 'हाँ' कहकर अपनेको नरकगामी बनाए ?

यह है औढर निराला, पर क्या उसमें कहीं कम्प नहीं है ? है, पर उस कम्प की कथासे पहले इस घटनाका यह 'परिशिष्ट' भी सुन लीजिये—

(३)

श्रीराम शर्मा 'प्रेम' ने उक्त घटना एकबार निरालाजीकी उपस्थितिमें दूसरे मित्रों को सुनाई। सुनकर निरालाजी बहुत देरतक आकाशकी ओर एकटक देखते रहे

और तब बोले—"इसी विश्व युद्धके दिनोंमें अंग्रेज सरकारने मुझे एक लाख रुपये 'आफर' किये कि मैं नगर-नगरमें रेडक्रासके लिये हिन्दीके कवि-सम्मेलन करूँ। इन सम्मेलनोंका प्रबन्ध-आदि सब जिलोंके अधिकारी करते, मेरा काम तो बस उनमें कवि-मित्रोंके साथ पहुंचकर कविता-पाठ करना भर होता। पर मैंने यह 'आफर' ठुकरा दी! पता नहीं, यह बात बड़ी है, या तुम्हारी वाली बात बड़ी थी?"

और तबभी वे बहुत देरतक आकाशकी ओर ही ताकते रहे; जैसे यह सब वे अपने आप से ही कह रहे थे!!

(४)

लखनऊ-रेडियोसे हिन्दी काव्य की छायावादी भावधारापर एक 'टाक' प्रसारित हुई। उसमें इस धाराके प्रवर्तकोंमें प्रसादके बाद पन्तको और तब निरालाको स्थान दिया गया था! निरालाजीने यह सुना—यह नहीं हो सकता, यह असम्भव है।

उनका खून खौल उठा, वे रातभर नहीं सोए, शायद घूमते ही रहे। दूसरे दिन आस्तीन चढ़ाये-सी मूडमें वे भगवतीप्रसाद वाजपेयीके घर आए। वे भीतर गए थे, मैं बैठक में बैठा था। बिना मेरी ओर देखे, वे मेरी ओर पीठकर बैठ गए। वे 'विशालवक्षाः परिणद्ध कन्धरः' मनुष्य हैं; फिर आज तो उनकी नस-नस तनी हुई थी—वे मुझे पयोधर-देहा दिखाई दिए।

मुझे उनकी अन्तर्दशाका पता न था। श्रीमती चन्द्रवती ऋषभ सैन जैनकी तभी प्रकाशित कहानी पुस्तक 'नींवकी ईंट' मेरे पास थी। उसपर मैंने लिखा—'महा मानव श्री निरालाको लेखिकाकी ओरसे सादर भेंट—' और मैंने हस्ताक्षर कर पुस्तक उन्हें दे दी। उन्होंने जोरसे पढ़ा—'महामानव श्री निरालाको···सादर भेंट।' घूरकर मुझे देखा और तब बोले—"यह क्या लिखा है?"

मैंने कहा—"जो समझ पाया, वही लिखा है।" सुनकर उनका चेहरा मुलायम पड़ गया और पुस्तकको झुलाते हुए, वे वाजपेयीजीसे बिना मिले चले गए।

सन्ध्यातक कई मित्रोंने मुझे कहा—"आज तुमने निरालाजीको खूब शान्त किया। बात यह हुई कि निरालाजीने अब मान लिया था कि उन्हें ठीक-ठीक पहचानने वाले इस देशमें हैं—रेडियो पर किसी मूर्खने कुछ अण्ट-शण्ट कह ही दिया, तो क्या है!" वे अब प्रसन्न और सन्तुष्ट थे और कई लेखकोंपर उन्होंने अपना सन्तोष प्रकट किया था।

यह है सरल शिशुसे आशुक्रुद्ध, आशुसन्तुष्ट निराला!

हिन्दी पत्रोंमें कई बार उनके अभावोंकी चर्चा बहुत हल्के हाथों हुई।

> यह हमारे सामाजिक जीवनकी कैसी विडम्बना है कि हममें करुणा भी जागती है, तो दूसरेके सम्पूर्ण आत्मगौरवका रस पीकर ही हम कुछ करना चाहते हैं। लेनेवाले में शक्ति हो तो चन्दा हममें है और लेने वाला अपनी सम्पूर्ण मर्यादाको धूलि-लुण्ठित कर हमारे सामने आए, तो भीख भी हम दे देते हैं। पर दान आज हममें लुप्त हो चला, जिसमें दाता देकर भी सुराहीकी तरह नत होता है और गृहीता लेकर भी प्यालेकी तरह गौरव-गर्वित!

और फिर निरालाजोको कोई देगा क्या? इस हल्की चर्चाके कुछ दिन बाद हो उत्तर-प्रदेशकी सरकारने उनकी एक पुस्तक पर २१०० रूपये का पुरस्कार दिया। दो हजार, एक सौ रूपये पाकर हममें कई ऐसे साहित्यकार हैं, जो अपनेको कुबेरका दत्तक मानलें। पर निरालाजोने इन रुपयोंको न देखा, न एकबार छुआ, दूरसे ही दान कर दिया—एक स्वर्गीय साहित्यिक मित्रकी विधवा पत्नीको पचास रुपये मासिकके हिसाबसे मिलते रहेंगे। क्योंकि उन स्वर्गीय मित्रसे कभी निरालाजीने सिर्फ २१) उधार लिये थे!! और आज उनकी विधवा पत्नी अपने मृत पतिकी साहित्य-साधनाके 'अभावों'का अभिशाप बड़े धैर्यसे आकंठ-पान करती हुई जीवन-यापन कर रही है। उत्तर-प्रदेशीय सरकारके इस हल्के दानका इससे अधिक 'सात्विक उत्कर्ष' और क्या हो सकता था?

(६)

मेरठमें एक साल तुलसी जयन्ती पर पधारनेकी उनसे प्रार्थना की गई। उन्होंने लिखा—"मुझे प्रचुर धन भेंट किया जाए; जब मैं सभा-स्थलमें आऊँ, सब खड़े होकर मेरा स्वागत करें और जब मैं कविता पढ़ूँ, तो सभापति भी खड़े रहें?"

तीसरी शर्त कठिन थी, क्योंकि मेरठके ही एक मान्य संभ्रान्त व्यक्ति इस कवि-सम्मेलनके सभापति निश्चित हो चुके थे। पर उसका समाधान हो गया स्वयं निरालाजीको हो सभापति बनाकर—"जिस सम्मेलन में आप पधारें, उसमें किसी दूसरेके सभापति होनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता!"

वे आये, खूब जमे और सम्मेलनको जमाए रहे, पर दूसरे दिन—

लम्बाकद, भरा शरीर, नीचे तहमन्द ऊपर कुरता, पीछेकी ओर झूलते केश, प्रभावशाली शुभ्रमुख (अब दाढ़ी-मूँछ भी), नशीली आँखें, रसीली वाणी; स्वामी विवेकानन्दकी सजीव प्रतिमूर्तिसे, ये जा रहे हैं निरालाजी मेरठ कालेज में।

मञ्च पर बैठे कि कविता पर बोलें। आवाज आई—"कविता पढ़िये!" वे बोलते रहे, तो कई आवाजें एक साथ उठीं—"कविता सुनाइये!"

यह पाबन्दी और निराला पर? बस खुल गया शंकरका तीसरा नेत्र! पृथ्वी थरथराई, समुद्र विलोड़ित हुए और पर्वत सकम्प: निरालाजी मञ्चसे उठ चले। आक्रोश इतना कि जूते पहन न सके, हाथमें उठाये चल-झपटे।

कालेज-द्वारपर कुछ साथियोंने उन्हें थामा। वे पसीनेसे तर थे। एक छोटे-से छात्रके हाथमें पंखा था—वह पीछे से हवा झलने लगा, किसीने हाथसे जूते ले, पैरों पहनाए। मुड़कर देखा—एक किशोर हवा झुला रहा है। मुलायम पड़े, पूछा—"क्या चाहते हो?"

"आपकी कविता सुनना चाहता हूं।" उस भोले किशोर ने कहा। भोले महादेव बरदानी हुए—"अच्छा कविताएँ सुनाएँगे, पर अब उस मञ्च पर नहीं?" क्षणों में नया मञ्च, नये लान पर बना और निरालाजी विराजे। दो घण्टेतक कविताएँ ही नहीं सुनाईं, उनका मर्मभी बताते रहे।

वाह, क्या प्रवाह, क्या अनुभूति और क्या कारीगरी; सब मिलाकर हिन्दीमें कवि निरालाजी अप्रतिद्वन्दी व्यक्ति हैं।

(७)

सर्वे विभागके क्लर्कोंकी तरह जिन्हें 'पैमाने' और 'प्रकार'से नापकर मनुष्योंको धरतीके टुकड़ों-सा स्वीकार करनेकी आदत हो गई है, वे निरालाको स्वीकार नहीं कर सकते। कोई उनकी शराबमें उलझ गया, तो कोई मांसमें और कोई उजबक-पन में।

निरालाजी अपनी स्वीकृतिके लिए कोई यत्न, अपनेमें कहीं कोई हेरफेर करें, यह असम्भव है। कोई उनसे कभी कहे भी, तो वे डी० एच० लारेंसके शब्दोंमें एकदम फुफकार उठेंगे—

यू से आइ एम रौंग!
हू आर यू, हू इज एनी बडी टु से आइ एम रौंग?
आई एम नाट रौंग!!!
तुम कहते हो कि मैं भ्रान्त हूं?
कौन हो तुम, और कौन है कोई और मुझे यह—
कहनेवाला कि मैं भ्रान्त हूं?
मैं भ्रान्त नहीं हूं!

'तुम तुंग हिमालय श्रृंग' !

डा० सत्येन्द्र एम० ए०

(अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय)

'तुम और मैं' के महाकवि महाप्राण निरालाने अपनी तपस्याकी अभिव्यक्तिको भूमि-'भू'-पर गहरी जमाकर 'स्व'तक हिमालयके तुंग-श्रृंगके सदृश पहुंचा दिया है। इस प्रकार विराट स्वयं विष्णु बन कर त्रिविक्रमके लिये निरालाके काव्यमें अवतरित हुआ है।

निरालाका शब्द-ब्रह्म निश्चय ही चतुरानन है। वह इलाहाबादके पथपर पत्थर तोड़ने वाली दीनाका भी वेद है, जुहीकी कली सी प्रस्फुटिता कल्पना-लोक शीला सृष्टिका भी वेद है, वह रामकी शक्ति पूजाके साथ शौर्यवर्ती वेद भी है, और तुलसीदासके साथ सशरीर रहस्यका निरुपण करने वाला वेद भी है। वह शब्द-ब्रह्म स्वयं शब्द-रूपमें समस्त-पदसे विराट अर्थको समा लेता है, वह शब्द-ब्रह्म स्वयं शब्द रूपमें जन-पदसे विराट अर्थको वहिर्गत किये देता है। वह एक साथ निरर्थक-सार्थक है, वह एक साथ सहज और गूढ़ है। इसी ब्रह्मकी सृष्टिमें 'कुकुरमुत्ता' के साथ 'वर्त्तमान धर्म' खड़ा है, और इस युगमें वेदव्यासके विनायक-मानस-उद्विग्नकारी उद्गारोंका प्रतीक है।

वेदान्त, रहस्यवाद, प्रगतिवाद और प्रतीकवाद जहाँ 'कहलाने एकत बसत' हैं—और इन सबके ऊपर जहाँ 'कुल्लीभाट' गंभीर व्यंग करता हुआ मुस्कुराता है, वहाँ निरालाकी महान प्रतिभाके प्रति श्रद्धा भी स्वयं सातंक अपना मस्तक नत कर देती है।

जो महान कवि है, महान विचारक है, शब्द-ब्रह्मका महान अधिकारी है, किन्तु इन सबसे भी अधिक जो मानवकी महानतासे अभीषिक्त है-जहाँ संकोच और संकीर्णता ढहकर भूमिसात हो चुकी हैं, और जो आजके युगमें ऐसी शुद्ध जाज्वल्यमान मानवताकी उपेक्षा-ध्वस्त मूर्तिका साक्षात प्रतीक है—उस विराट जन-वन्या—कुलित क्षेत्रमें उत्तुंग प्रकाश स्तम्भकी भाँति स्थित इस महाकविको मैं हृदयतः अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि उन्हींके शब्दोंको दुहराते हुए समर्पित करता हूं···"तुम तुंग हिमालय श्रृंग और मैं चंचल गति सुर सरिता"।

●

करुणामय निरालाजी

(श्री वाचस्पति पाठकका एक पत्र)

लीडर प्रेस, प्रयाग
१८-८-५३

प्रिय वरुआजी,

आपके इस आग्रहके प्रति कि मैं निरालाजीके संस्मरण लिखूं; मैं अब तक मौन रहा। पर आपका आग्रह रह-रह कर आ जाता है। सच तो यह है कि मेरी स्थिति निरालाजीके संबंधमें सोचते ही विचित्र हो जाती है, मन भर आता है, और मैं...... !

आज निरालाजी अपने ही में खो गये हैं। उन्हें आज उनके निकट पाना संभव नहीं। "रेत ज्यों तन रह गया है" गानेवाले कवि निरालाने अपनेको हमारे सामने यथार्थ रूपमें ही रख दिया है। उनके जीवनका स्वच्छन्द तरंगाकुल प्रवाह जिन्होंने देखा है, यह उड़ती रेत उनकी आंखोंमें भर जाती है।

यह महाविनाश लीला प्रकृतिके साधारण आचार ही से नहीं हुआ है। उस जीवनको सुखा कर रेत बना देनेमें मनीषियोंकी महान बुद्धिने प्रखर तांडव किये हैं। उनका सिंहनाद भी साहित्यका इतिहास है!

पर, कवि मरता नहीं, अपनी कविताओंमें ही नहीं, जीवनमें भी—यह उनके निकट आते-जाते आज भी लोग देख आते हैं...रेतकी उस मरुभूमिसे अब भी उनके जीवनके क्षण प्रगट हो जाते हैं।

निद्राहीन, अपने जीवनमें आजकल निरालाजी दिनरात टहलते रहते हैं। उनके कमरेके सामने तीन फीट चौड़ी जो गली है, उसकी सात गजकी लम्बाईमें उनकी अनवरत परिक्रमा चलती रहती है। दूसरोंके लिये सावर-मंत्र सा तर्कजाल उस समय उनके मन और वाणीको मथा करता है। ऐसेमें भी उनके चेतनके क्षण हैं।

एक दिन मेरे मित्र पं० गङ्गा प्रसादजी पांडेय निरालाजीसे मिलने गये। उनके पहुंचनेके कुछ ही क्षण बाद राहमें फिरनेवाली एक गऊ आकर निरालाजीके दरवाजे के सामने खड़ी हो गई। उसे देखते ही निरालाजी खुल पड़े। अब तकके मौन, अपनेमें उलझे, निरालाजीने पांडेयजीको बतलाया, "यह गऊ मुझसे कुछ खाना-पीना तो पाती नहीं, पर प्रतिदिन निश्चित समयपर आकर हमसे अपना काम करा ले जाती है।" यह बताकर वे गायके निकट पहुंच गये और उसकी ललरी सहलाने

लगे। गाय सुख पाकर गर्दन ऊँची करती जा रही थी और निरालाजी अपनी सम्पूर्ण चेष्टा से उसकी सेवामें जुटे रहे।

उनका व्याकुल मन ऐसा काम सहज ही खोज लेता है। कुछ दिन पूर्व उनके घरके सामने एक कुतियाने बच्चे जने। कुतिया बच्चोंको छोड़कर कहीं आने-जानेमें असमर्थ थी। कुतियाके बाहर न जानेपर उसके खाने-पीनेका प्रबन्ध कैसे हो? निराला जीकी आंखोंसे यह बात छिपी न रही! पहले तो निरालाजीने उसके खाने-पीनेका प्रबन्ध किया। पर उनको यह भी लगा कि इसको कुछ देरके लिये इन बच्चोंसे छुट्टी भी मिलनी चाहिये, इसकी आवश्यकताओंकी पूर्ति तभी हो सकेगी। यह समझते ही निरालाजीने उस कुतियाको अंग्रेजीमें (वे आजकल प्रायः अंग्रेजीमें ही बात करते हैं) आदेश दिया, "तुम घूमने जाओ, मैं इन बच्चोंकी रखवाली करूंगा।" आश्चर्य है, कुतियाने उनकी बात समझ ली और मान ली। अब कुतियाको प्रायः छुट्टी मिलने लगी और निरालाजी उन क्षणोंमें उसके बच्चोंकी निगरानी करने लगे। कौन बच्चा मांके न रहनेपर किधर चला और किसमें युद्धोत्तेजना जगी, इसको परखते रहना और उसकी उचित व्यवस्था करना यह सतर्क प्रहरीका सा उनका अपना काम बन गया!

आजके जीवनमें ऐसे ही कुछ क्षण उनकी चेतनाके हैं और तभी उनकी करुणा ओस सी झरती दीख पड़ती है। वरुआजी! निरालाजी सम्पूर्णतः करुणामय रहे हैं, जो उन्हें जानते हैं, वह यही जानते हैं।

आपने उनके अभिनन्दनका आयोजन किया है। मैं कुछ लिख न सका, पर इस अवसर पर मेरा भी प्रणाम निवेदित है।

आपसबके निकट विनीत,

वाचस्पति पाठक

●

—एक परीक्षा-पत्रमें प्रश्न आया कि तुम अपने जीवनमें क्या बनोगे?

—एक किशोरने इस प्रकार उत्तर लिखा, "मैं 'निराला' बनूंगा। जब मैं कविता-पाठ करूंगा तो अनुभूतियोंकी सामूहिक वर्षा होने लगेगी। जब मैं जनताके बीच चलूंगा तो लोगोंके हृदय मनुष्योचित भावनासे आर्द्र होने लगेंगे। जब मैं अपना वरद् हस्थ उठाऊंगा तो देशका राष्ट्रपति भी साष्टांग प्रणाम करेगा और जब मैं करुणासे उमड़ कर अश्रु-सिक्ता होऊंगा तो देशकी देवियां अपने आंचलके दुलारमें मुझे थपकियां देने लगेंगी। इसलिये भी मैं 'निराला' बनूंगा, क्योंकि देश अभी गरीब है और आर्थिक-दयनीयताका वरण आजके भारतीय साहित्यकारोंको सिर्फ श्रेयष्कर ही नहीं है, अनिवार्य है। तभी मैं जनताका प्रतिनिधि साहित्य-स्रष्टा बन सकूंगा!!"

निरालाजी : आजकल

श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय एम०ए०

निरालाजी आजकल प्रयागके दारागंज मुहल्लेमें अपने मित्र कलाकार श्री कमला शंकरजीके यहाँ रहते हैं।

आप उन्हें या तो मकानके सामने पत्थर-जड़ित पतली गलीमें घूमते हुये या कमरेमें तख्ते पर बैठे हुये देख सकते हैं। उनका कहीं बाहर आना-जाना बहुत कम होता है। कभी-कभी महादेवीजीके यहाँ आते-जाते रहते हैं।

पिछले पाँच-सात वर्षोंसे उनका हाल विचित्र-सा है। इस स्थितिमें उनकी मानसिक विश्रान्तिके लक्षण स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं।

आजकल किसीसे भी अधिक समय तक बातचीत करनेका 'मूड' नहीं रखते, क्योंकि वे स्वयं अपने-आप ही बात करते रहते हैं। इस स्वगतकी कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जिनका समझना संदर्भके साथ ही सम्भव है, अन्यथा नहीं। स्वगतमें वे कभी व्यक्तिगत विषयोंको नहीं लेते, वरन् उनके स्वगतका विषय सदैव सामूहिक तथा व्यापक होता है। शायद उनके लिये व्यक्तिगत विषयोंका अस्तित्व ही नहीं रह गया। इस स्वगतके किसीके द्वारा सुना-अनसुना होनेकी भी चिंता वे नहीं करते। कभी-कभी किसीके पहुंचने पर भी केवल नमस्कार-प्रणामका उत्तर देकर अपना स्वगत जारी रखते हैं। वे बोलते चले जाते हैं और आगन्तुक स्तब्ध बना सुनता रहता है। अनेक बार प्रश्नोंका उत्तर देकर भी वे फिर अपनेमें लौट जाते हैं। अपने-आप प्रसन्न तथा खिन्न होनेके भावोंको भी स्पष्ट करते रहते हैं। निश्चय ही ऐसे व्यक्तिसे मिलनेमें एक बहुत बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ता है, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु इसका आशय यह कदापि नहीं कि अतिथिकी आवभगतमें, स्वागत-सम्मानमें वे किसी प्रकारकी अनुदारता प्रदर्शित करते हैं।

अपनी चलती बातको सहसा रोक कर वे प्रश्न और आदेशको एक करते हुये कहेंगे, "चाय पियो, और थोड़ीसी चाय तो भेजियेगा।" और सिगरेट, पान, सुरती आदि भी यथारुचि खिलाते-पिलाते हैं। यह सब होते हुये भी यह आवश्यक नहीं कि वे अतिथिसे बात-चीत भी करें।

यदि बड़ी देर तक उन्होंने आगन्तुककी प्रतीक्षा और साहसको परख लिया तो फिर कुछ बात चल भी सकती है। प्रायः लोग इसके पहले ही ऊब जाते हैं। ऐसे संवादोंमें वे व्याख्यामें न जाकर सूत्र-शैलीमें बातचीत करते हैं। संस्कृत, अंग्रेजी,

बंगला तथा हिन्दी आदि भाषाओंके प्राचीन-नवीन उदाहरणों द्वारा अपनी बातका मर्म स्पष्ट कर देते हैं। यदि आप समझनेमें चूक जायँ, तो खिन्न भी हो उठते हैं। अपने अनुभूत सत्योंको वे स्वभावतः अकाट्य मान कर उन्हें सबके लिये सहज-सुलभ भी मान लेते हैं। उनसे मिलनेकी यह स्थिति वास्तवमें बहुत कारुणिक हो उठती है।

स्वगतमें समाचार-पत्र, अध्ययन, मनन सभीका संयुक्त प्रभाव परिलक्षित होता है। समाचार पत्रोंके अतिरिक्त रवीन्द्र, कालिदास, माघ, शेक्सपियर आदिकी रचनायें भी वे पढ़ते हैं। इनकी कृतियोंको अपनी चुनौटी तथा तमाखूके साथ अलमारी में उन्होंने सजा रखा है। और रामचरितमानस तो उनको प्रायः कंठाग्र है। चश्मे के साथ अध्ययनरत देखकर उनकी तन्मयताका निरीक्षण बड़े मजेसे हो सकता है। बीच-बीचमें वे अपने वक्तव्य भी देते जाते हैं। 'वाह शेक्सपियर, चूँकि तुमको अपनी नायिकाका नाम वाइला रखना है, इसलिये तुमने पाठकोंका परिचय पहले ही वाइ-लेट फूलोंसे करा दिया है। इसीको वातावरणकी सृष्टिका विधान कहते हैं।'

कभी-कभी रवीन्द्रकी कविताओंका पाठ इस प्रकार करते चले जाते हैं, जैसे बंगाली पास होनेका सुनने वालेको उन्हींने प्रमाणपत्र दिया हो! उस समय उनकी भाव-भंगिमा और रसनिमग्नता इतनी तीव्र रहती है, स्वरोंका उतार-चढ़ाव इतना प्रखर रहता है कि सुनने वालेको बराबर उनकी प्रेरणाका साथ देनेके लिये विवश होना पड़ता है। सौभाग्यसे यदि उन्होंने रवीन्द्रकी कतिपय कविताओंसे अपनी कविताओंकी तुलना शुरू कर दी, तब तो निश्चय ही एक ऐसे साहित्यिक आनन्दका आकलन होता है जो अन्यत्र दुर्लभ है। एक सचेष्ट द्रष्टा और कलामर्मज्ञके नाते वे कभी अपनी कविताको उन्नीस और कभी बीस बता कर निमर्म निष्पक्षताका प्रतिपादन करनेमें नहीं चूकते।

यह सच है कि उनकी वर्तमान स्थितिका बहुत कुछ कारण उनका यही प्रचण्ड अहं है। क्योंकि 'रामकी शक्ति पूजा' में राम पर तथा तुलसीदासमें गोस्वामीजी पर उन्होंने अपने अहंका आरोप ही नहीं, उसकी प्रतिष्ठा की है। अवस्था और थकानकी इस दुरूहतामें भी उनका व्यंग और ओज शिथिल नहीं पड़ा। इधर अवस्थाका आग्रह भी बढ़ गया है। ओज, व्यंग और आस्थाकी त्रिवेणी, 'अर्चना' की सृष्टि इन्हीं दिनोंकी है। आजकल 'आराधना' का सृजन चल रहा है। जीवनकी निश्छल दिव्यता लिये हुए उनकी अडिग आस्था और विनोदपूर्ण मार्मिक व्यंग तथा सुझाव 'आराधना' की आधार-मूर्ति है:

जग ठग को प्रेयसि रात दो,
मुझको कविताका प्रभात दो !

अथवाः—

पद्माके पद पाकर हो।
सविते कविताका वर दो।
मेरी अलक धूल पग पोंछे,
श्रम सीकरको पलक अंगोछे,
उठें, ऊर्द्धगति मनके ओछे,
रंग रंगसे गागर भर दो।

याः—

आज मन पावन हुआ है,
जेठमें सावन हुआ है।

एक-एक कविताके कई रूप तथा पद-विन्यास भी देखनेको मिलते हैं। कभी ऐसा, कभी वैसा, जैसा पाठक चाहें। जो भी हो, कविताओंमें वे आज भी सबसे आगे हैं! वास्तवमें निरालाजी काव्य-क्षेत्रमें सबसे बड़े प्रयोगवादी रहे हैं। उन्होंने भाव, भाषा तथा छन्दको जीवनकी गतिके साथ नये-नये रूप, रंग तथा अभिव्यक्ति देनेमें सबसे अधिक प्रौढ़ता और सतर्कता दिखलाई है, इसे कौन नहीं जानता? उन्होंने अपने दैनिक जीवनको इतना सरल-सहज बना लिया है कि वे किसी प्रकारकी व्यवस्थामें बँधकर उसे कृत्रिम नहीं बनाना चाहते। जो पाया सो खाया और तख्ते पर बैठे अपने में मस्त रहे। वस्त्रोंका तो एक प्रकारसे सर्वथा त्याग ही सा कर दिया है। एक लुंगी, शेष शरीर उँघार। उनका कहना है कि चमड़ा मोटा होनेके कारण उन्हें शीत-घाम नहीं सता पाते। स्वास्थ्य अब भी अच्छा है, डील-डौल, चेहरा-मोहरा अब भी ठिकानेका चढ़ा हुआ और चुस्त।

कल्पनात्मक अनुभूतियोंकी भूमिपर से जहां वे कोई बात करेंगे, वहां उन्हें समझना कठिन है। और सुनने वाला तड़ाकसे निरालाको पागल या और कुछ इसी तरहका सम्बोधन देनेमें नहीं चूक सकता। वे किसीके अभिमतकी परवाह नहीं करते, क्योंकि वे जानते हैं कि आप दुनियादारीमें भटक रहे हैं और वे असलको पाकर आपके लिये पागल बन बैठे हैं!!

उनसे मिलने वाले को सबसे अधिक आश्चर्य तब होता है, जब वह देखता है कि इन तमाम उधेड़-बुनोंमें फँसा हुआ भी कवि-जीवन, जगत तथा समस्त मानवता

के प्रति जागरूक हैं। पुलिस द्वारा विद्यार्थीकी पसुली टूटनेका दर्द वे महसूस करते हैं, भुखमरीसे मरे व्यक्तियोंकी नारकीय यातना अनुभव करते हैं और कोरियाकी लड़ाईमें अपनी राय रखते हैं। व्यक्तिगत कपड़े-लत्तों, कोट-चादरकी बात छेड़ने पर कूद उठते हैं,—"ई तो बताओ, यहां कितनोंके पास कोट-ओवरकोट है? आँख मूंद के न चलो" आदि-आदि।

समय समय पर राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर वे अपने तर्क और सुझाव देते हुये एक ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचना चाहते हैं, जहां समान व्यवस्थाकी अनिवार्यता ही उनका परम लक्ष्य है।

जोशी-जयन्ती-सप्ताहके पूर्व मैं उनके दर्शनोंके लिये गया। वे गलीमें टहल रहे थे। 'क्या बात है? कमाल कर दिया,' का शब्द उनके मुंहसे बराबर निकल रहा था। मुझे देखते ही बोले "क्या श्लोक है!" श्लोक सुनाकर अर्थ कहने लगे। श्लोक किसी प्राचीन कविका था, जिसका भाव कुछ ऐसा है—

'गर्भिणी सिंहनी आषाढ़के गरजते बादलोंसे कहती है—ऐ बादल! थोड़ी देरके लिये अपना गरजना बन्द कर दो। मेरे पेटका बच्चा तुम्हारी गरजको हाथीकी चिंग्घाड़ समझ कर घाव करनेके लिये पेट फाड़ कर कहीं बाहर न निकल आवे?' मुग्धभावसे निरालाजीने कहा—"देखा, यह है धरतीकी विजयका गीत! मिट्टी बादल को फटकार रही है।" मैंने उक्त भावकी स्वीकृतिके साथ कहा—"आप भी तो आज कल धरतीके विजय-गीत लिख रहे हैं।" निरालाजी सहसा संकुचित हो उठे—"हां, कुछ न कुछ तो लिखना ही है। हिन्दीमें यारोंने अर्जित कीर्ति खानी शुरू कर दी है; पर हम क्या करें! कीर्ति-ऊर्ति तो है नहीं जो खांय। उलटे बदना भी हैं जो कभी खुराक नहीं बन सकती। हमें तो जब तक जीना है, सीना है, क्योंकि रोटियाँ तो तोड़नी ही पड़ती हैं।"

और अचानक वे कुछ उत्तेजित हो उठे, जैसे वायुके झोंकेसे आग प्रज्वलित हो उठे, बोले, "देशकी हालत खराब है। अभी तक भुखमरी चल ही रही है। गंगाजी सूख गई। हमने तो गंगा भी छोड़ दी, पर भूख नहीं छुटती। बाप रे बाप, जानते हो, गंगामें दो बहुत बड़े घड़ियाल हैं। जल भ्रष्ट कर रहे हैं और आदमियोंको पकड़ते हैं। एक पेट पकड़ता है, एक सिर। दोनों बड़े भयानक हैं। मैंने तो साफ कहा है—Mister One! you can not make us wooden headed. Mister Second! you cannot catch us

with gold. वाह भाई, लोग यह नहीं समझते कि हमारे लिए जैसे मौशियो स्टालिन, उसी प्रकार आइसनहोवर। क्योंकि एक सिर मारता है, दूसरा पेट।" कहना न होगा कि इस रूपकसे वे रूसकी विचारात्मक भौतिकवादिता एवं अमेरिका की सम्पत्तिके बल पर संसारको जीतनेकी आकांक्षाको ही फटकार बताना चाहते हैं। गंगा, देशकी संस्कृति अथवा राष्ट्रीयताका प्रतीक है, यह भी स्पष्ट है।

कुछ ठहर कर फिर बोले—"केवल गनेशकी पूजाका अर्थ जानते हो न? बस वही पेट और प्रकाश या सिर उसका आशय है। मानवताके लिये दोनों आवश्यक हैं, अनिवार्य हैं। सोचा था इस बार भारतकी बाजी रहेगी, पर कुछ गड़बड़ दीखता है। देशकी प्रतिभा भी कुंठित हो गई है। स्वतन्त्र होकर भी स्वतन्त्रता का अर्थ हम नहीं जानते, या जानना नहीं चाहते या पाते, नहीं जानते, चाहे जो भी कहा जाय।"

बातचीतका क्रम बदलनेकी इच्छासे मैंने कहा—'जोशी-जयन्तीका आयोजन हो रहा है, आप भी अपना आशीर्वाद दें।'

"हाँ, हाँ सुना है, पत्रोंमें भी चर्चा थी। बहुत अच्छा है, मिस्टर जोशीने बहुत काम किया है, उनका आदर होना चाहिये। हम तो अपना अभिनन्दन अँग्रेजीमें देंगे। जरूरत है कि हम लोग अँग्रेजोंमें अपनी चीजें दें, ताकि विश्व साहित्यकारोंके सामने देशका साहित्यिक दान आ सके। हिन्दीकी कुछ कृतियाँ अँग्रेजीमें अनुवादित हों, तो मजा आजाय। लोगोंकी आखें खुल जायं।"

तबतक चाय आ गई। निरालाजीने दीर्घ सांसके साथ प्याला उठाया और मैंने भी दूसरे प्यालेको एक ही सांसमें भीतर उतार लिया। मैं चलनेकी तैयारीमें हूं, यह उन्होंने समझा और बोले—"सुनो, यह मत भूलना कि इन दोनों घड़ियालोंकी जननी हमारी भूख है। जवाहरलालको लिखो, गल्ला सस्ता करें, सब समस्या हल!"

मैं वापस आता हुआ सोच रहा था, सिर-विचार तथा पेट-धन दोनोंका ही निरालाजी बाहरसे लेना उचित नहीं समझते, बल्कि स्वाभाविक रीतिसे इन दोनों का समन्वयात्मक स्वरूप अपनी संस्कृतिसे ही ग्रहण करना चाहते हैं।

जो भी हो, निरालाजीके पास जाकर यही लगता है कि वे अपने व्यवहार, बात तथा काव्यमें अपने समयके साहित्य तथा साहित्यकार की स्थितिका सौरस बिखरा कर उसे एक उच्च जीवन-स्तर पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। वे प्रायः कहते हैं—

The experimental demonstrations of one man may save the times of many.

वास्तवमें निरालाजीका जीवन-दर्शन इतना व्यापक और विराट है कि साधारण व्यक्तिके लिये वह पागलपन ही जँचेगा। परन्तु इसमें भी संदेह नहीं कि मानवता के इतिहासमें ऐसे पहुंच गये तथाकथित पागलोंने उसका जितना अधिक कल्याण किया है, उतना दुनियादारीकी चतुरता लिये हुये अपागलोंसे नहीं बन सका। उन्होंने हमारे साहित्यमें अपनी प्रतिभाका जो दान दिया है, वह आस्थावान होनेके साथ ही बहुत महान है, इसमें विवाद नहीं। उनके वाक्य कितने सारगर्भित तथा मार्मिक हैं :

1. I have combined the Contribution in terms of literary art to the philosophy of living.

2. I am not subject to the limitations of my audience.

3. I as an artist know the right relation of Knowledge to Action and of Knowledge to Contemplation.

4. I think the natural goodness is better than any piece of art.

5. I am making an example of playing the same card in Life and Literature.

सिद्ध अमृत-मंथन !

ट्रेनमें दो साहित्यिक मित्र निरालाजीकी चर्चा कर रहे थे। एक तन्मय-भाव से सुन रहे थे, दूसरे रस-निमग्न सुना रहे थे। कि श्रोता महोदयने कहा—"एक बात कहूं। तुम निरालाकी बात कहते हो, मैं कहता हूं टैगोर भी बंगला छोड़कर हिन्दीमें आता तो ऐसा ही वैराग्य अपनी विरासतमें छोड़ जाता। और···।"

वक्ता महोदय वाक्यका भाव ग्रहण कर गये और तपाकसे बोले—"आप बात उल्टी कह गये। यह कहिये कि हिन्दी अब भी बड़-भागिनी है और सन्त-परम्परा का निभाव सिद्ध दार्शनिक अमृत-मंथनको लिये हुए चल रही है !"

शिव शिल्पी निरालाजी

श्री अमृतलाल नागर

निरालाजी अपने जीवनकालमें ही मंदिरके ठाकुरकी तरह पुज रहे हैं। कहावत है कि हजार हथौड़ोंकी चोट खाकर एक महादेव ढलते हैं। महाकविने भी चोट-पर चोट सहकर यह देवत्व सिद्ध किया है। यह विधिके विधान की सबसे बड़ी विशेषता और सबसे बड़ा व्यङ्ग है कि जब उनमें किसी प्रकारकी कीर्ति-कामना शेष नहीं रही, तब वे घर-घर में पूजा पा रहे हैं। यही नहीं, अब तो जो उनके साथ रहे, वे भी 'सोना' हो गये।

निरालाजी के संस्मरण लिखनेमें मुझे बहुत संकोच होता है। उनका जीवन किसी भी महान औपन्यासिक 'हीरो' से कम नाटकीय नहीं।

सन् २९ या ३० के आरंभमें पहली बार निरालाजीके दर्शन किए थे। अमीना-बाद (लखनऊ) में हनुमानजीके मन्दिरके दाहिनी ओर बरामदेमें वे चले जा रहे थे ; लुंगी, कुर्ता और सूती बनियायिनी कपड़ेका कंटोप पहने, बहुतों द्वारा बखानी गई अपनी लंबी छरहरी पुष्ट देह, लंबी नाक और बड़ी-बड़ी आंखोंवाला आकर्षक व्यक्तित्व लेकर निराला सारे बाजारमें अलग लगते थे। 'माधुरी' या 'सुधा' में उनका चित्र देख चुका था, इसलिए पहचाननेमें देर न लगी। उन दिनों साहित्यिक विभूतियोंके दर्शन कर मुझे वैसा ही नशा चढ़ता था, जैसा आजके नौजवानोंको सिनेमा-स्टारोंकी झलक-पलकसे चढ़ता है।

तबसे अक्सर निरालाजीको अमीनाबादमें घूमते हुए देखनेका अवसर मिला। सामना होनेपर मैं बड़ी भक्तिके साथ प्रणाम करता, जवाबमें उनका दाहिना हाथ उठता।

कहानियां लिखने लगा था, किन्तु तब तक उन्हें कहीं प्रकाशनार्थ भेजनेकी इच्छा भी मनमें नहीं आई थी। हां, श्रद्धेय पण्डित रूपनारायणजी पाण्डेयकी सेवामें तड़के ही पहुंचकर उन कहानियोंको जँचवा लिया करता था ; एक दिन पाण्डेयजीसे परिचय-पत्र लेकर मैं निरालाजीकी सेवामें पहुंच गया। निरालाजी उन दिनों अमीनाबाद पार्कसे श्रीराम रोडकी ओर मुड़नेवाली ढाल पर एक होटलमें रहा करते थे। गुम्मेजड़े फर्शवाले चौकोर कमरेमें एक ओर किताबसे ढँका घड़ा, चारपाईके आसपास छितरी हुई पत्र-पत्रिकायें, और एक कोनेमें शराबकी खाली बोतल पड़ी थी। निरालाजी पलँगपर पालथी मारकर बैठे चूना तमाखू मल रहे

थे। मैंने श्रद्धापूर्वक उनके चरण छूकर पाण्डेयजीका पत्र बढ़ाया। उन्होंने पलँग पर सामने पत्र रखनेका आदेश आंखोंके इशारेसे दिया। खैंनी मलते हुए नज़र घुमाकर वे पत्र पढ़ने लगे। पत्र पढ़कर वे फिर अपने काममें लग गये, फट-फट फटककर तमाखू मूँहमें डाल ली, एक बार इधर-उधर फिराकर उसकी थुक्का फजीहत की, और फिर एकदमसे खड़े होते हुए पूछा—"आप ··आप···आप क्या लेंगे ? लमनेड या कोई शरबत ?"

खातिरदारी करना निरालाजीके चरित्रकी विशेषता रही है। मैंने कभी किसी को स्वागत-सत्कार पाये बिना उनके घरसे लौटते नहीं देखा! छोटे-बड़े सबका समान रूपसे सत्कार करनेमें निरालाजीके समान सतर्क और सदैव तत्पर रहनेवाले लोग बहुत ही कम देखनेमें आते हैं।

निरालाजी गुरुदेवके अन्यतम भक्तोंमें से हैं, यह सब जानते हैं। उनके सामने गुरुदेवके खिलाफ कोई बात कहना अच्छी-खासी जहमत मोल ले लेना था। यह और बात है कि जब वे पैसेकी तंगीमें हों या आन पर आ जायं तो स्वयं ही उनकी ऐनी-पैनी आलोचना करने लगते कि देखते ही बनता था। परन्तु उसी समय यदि कोई दूसरा व्यक्ति उनकी बुराईमें एक शब्द भी कह दे, तो चटसे उलट कर रवीन्द्रनाथके तरफदार हो जाते थे। इसी सिलसिलेमें एक बात मैंने बहुत बार आजमाई है ; पारिश्रमिकके रूपमें कहींसे आये हुये पैसे जब चुकने पर होते या चुक जाते थे, तब रवीन्द्रनाथ निरालाजीके लिये कोरे कवि और भक्तिभाजन न रह कर प्रिंस द्वारकानाथ टैगोरके पोते हो जाते थे।

एक बारका जिक्र है। निरालाजी हीवेट रोडके एक होटलमें रहते थे। गर्मीके दिन थे। उन दिनों कुछ रोज़से निरालाजी अपने लौकिक ऐश्वर्यसे स्वयं लक्ष्मीपति को भी लजा रहे थे। जब महाकविकी जेबमें सौ-पचास रुपये हों, तब कौन उनके सामने ठहर सकता है ? उस दिन भी *घड़ा भर ठंडाई पिसवा कर रखी थी, और दिन भर वही पीनेका निश्चय किया था।* हां यह जरूर था कि उस दिन कई रोजके बाद गुरुदेव फिर प्रिंस द्वारकानाथके नातेसे याद किये जा रहे थे। बातें करते-करते मौजमें आकर चारपाईसे 'गल्पगुच्छ' उठा लिया और पढ़ने लगे। कहानी कौन सी थी, यह अब याद नहीं ; पर एक जगह उसमें इस प्रकारका वाक्य आया कि 'मुखाग्नि उनके कुलदीपकने ही लगाई'। निराला तारीफ़ कर चले। तभी दो-तीन साहित्यिक सज्जन निरालाजीसे मिलने आये। अपने स्वभावके अनुसार

महाकवि उन लोगोंकी खातिरदारी करनेके लिए व्यग्र हो उठे। चारपाई पर पड़े हुये कुरतेसे उन्होंने पांचका एक नोट निकालकर लल्लूको दिया, कहा—"बरफ़ ले आओ। घड़ेमें ठंडाई रक्खी है, आप लोगोंको पिलाओ।"

लल्लू (श्रीरामप्रसाद यादव)—निरालाजीके लखनवी हनुमान—यह समझे कि उन्होंने मेहमानोंके लिये बरफी मंगाई है! लल्लू चूँकि यह अन्दाज नहीं लगा पाये थे कि रवीन्द्रनाथ अब संबोधनमें प्रिंस द्वारकानाथके पोते हो चले हैं, इसलिए कमरेमें बैठे चार-पांच सज्जनोंका ध्यान कर बहुत-सी बरफी खरीद लाये। निराला जीने बरफी देखकर एकबार आंखें फाड़ीं—उस अन्तिम नोटसे उन्हें कुछ अत्यावश्यक सामान खरीदना था—पर एक सेकंडके अन्दर ही उनका 'मूड' बदल गया, मुस्कुराकर बोले—"अच्छा किया। अब बरफ़ ले आओ।" आशुतोष निराला अपनी 'अत्यावश्यकता' को भूलकर फिर ऐसे रंगमें आये कि वे पांचों रुपये दिनके ग्यारह बजते-बजते तक मेहमानों की खातिर-तवाजहमें खर्च हो गये।

अपने दुख-सुखको भूलकर दूसरेके सुखकी व्यवस्था करना निरालाजीका स्वभाव है। शिवजीके किसी फक्कड़ भक्तने अपने आराध्यदेवका वैभव बखानते हुए कहा है: "बम बम भोलेनाथ कि जिनके कौड़ी नहीं खजाने में।
तीन लोक बस्तीमें बसाये, आप बसे वीराने में॥"

यह उक्ति शिवशिल्पी निरालाके लिए भी सार्थक होती है। जब वे लखनऊ में रहते थे, मैंने पचीसों बार उनकी अवढर दानशीलताका परिचय पाया है। आप कष्ट सहकर भी निरालाजी जरूरतमन्दोंको अपने तनके कपड़े तक उतार कर दे देते हैं। एकबार सर्दीके मौसममें निरालाजी अपने लिए एक लिहाफकी जरुरत महसूस कर रहे थे। उनका कंबल बहुत घिस चुका था और उसमें सर्दीके आक्रमण को रोकनेकी शक्ति बाकी नहीं रह गई थी। संयोगवश उन्हें कहींसे रुपया मिल गया; लिहाफ बनवाया। मुश्किलसे दस-पांच रोज ही इस्तेमाल किया होगा कि एक दिन उनकी नजर अपने होटलके सामने चबूतरे पर पड़ी रहनेवाली भिखारिन पर पड़ी। वह अपने गोदीके बच्चेके साथ जाड़ेमें ठिठुरती, गठरीसी बनी हुई पड़ी थी। निरालाजीकी जगह यदि और कोई होता तो जमानेकी गरीबी पर मकर-रोदन कर फिर इतमीनानसे अपने नये लिहाफ की गर्माहटमें दुबक जाता; अथवा बहुत करता तो अपना फटा कम्बल भिखारिनको दे देता और अपनी दयालुता पर यदि घमंड नहीं तो संतोष अवश्य प्रकट करता। परन्तु निरालाजी ड्राइंगरूममें

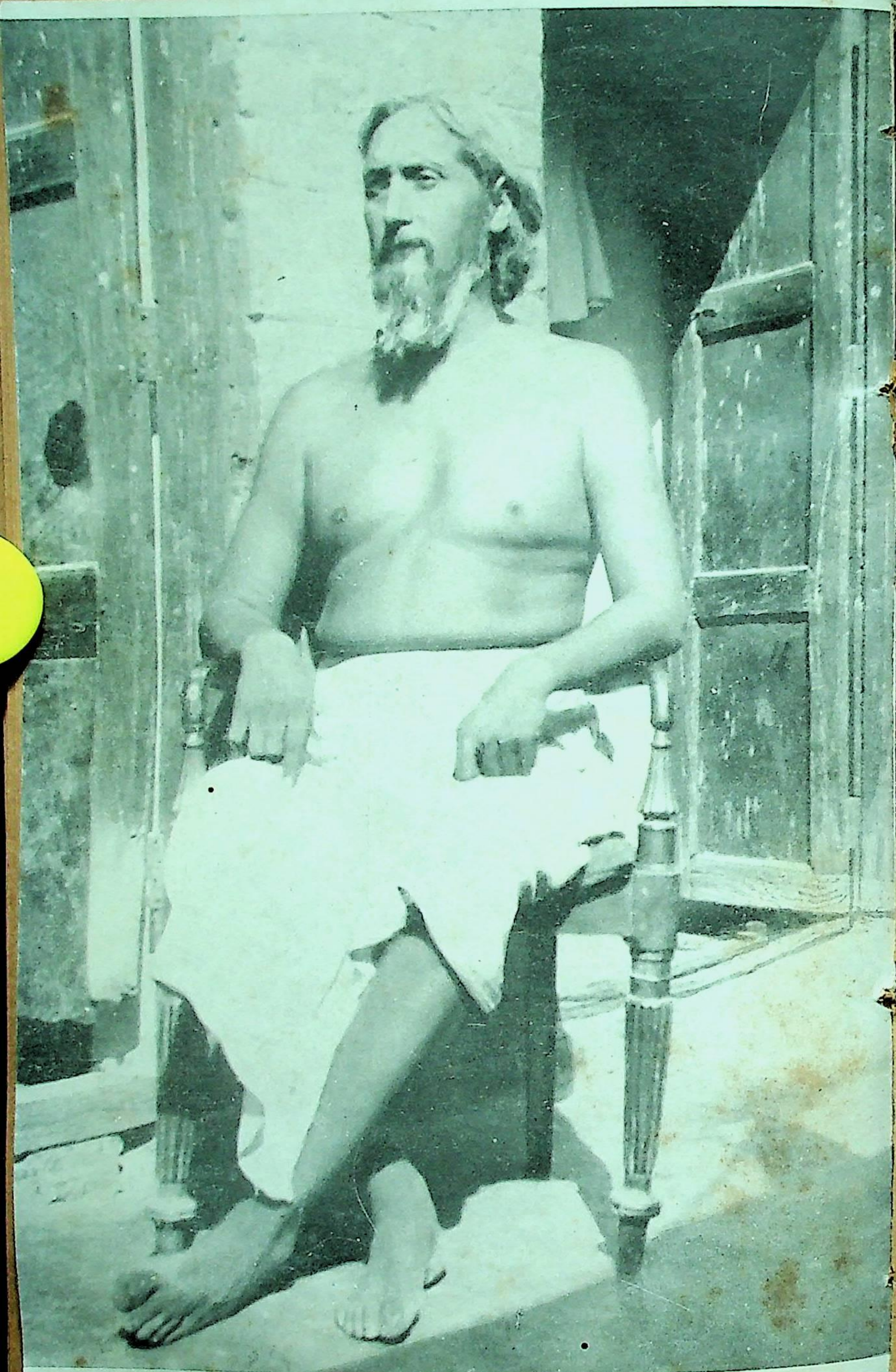


[१९३३

जब महाकवि जीवनके उन्मुक्त

उन्माद से विभोर रहा करते थे...





[चित्र : श्री रा० प्र० यादव

बैठकर सत्य, दया, क्षमा, करुणा आदिके नारे लगानेवाले तो हैं नहीं। उन्होंने सोचा कि जो कंबल बन्द कमरेमें भी सर्दीसे उनकी रक्षा नहीं कर पाता, वह खुली सड़क पर पड़ी हुई भिखारिन और उसके बच्चेको क्योंकर बचा सकेगा? इसलिए अपना नया लिहाफ वे उसे उढ़ा आये!

हालहीमें प्रयागमें, प्रयागके दारागंज मुहल्लेमें जब मैंने साधारण लोगोंका उनके प्रति अत्यधिक आदर-भाव देखा तो यह अन्दाज लगा लिया कि सदाकी तरह अब भी निरालाजीका अधिकांश धन उनके 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के इन्हीं सदस्योंके काम आ रहा है।

निराला दाता है, वह कभी याचक नहीं रहा।

उनकी कठिन कमाईकी रकम अधिकतर दूसरोंके ही काम आई है। अपने तन पर उन्होंने अपेक्षाकृत कम खर्च किया है। यह बात नहीं कि निरालाजी शौकीन न रहे हों। जब कवि-सम्मेलनमें जाते थे, तब उनका ठाट देखने लायक होता था। पम्प शू, चुन्नटदार धोती, लम्बा कुरता, उसपर चदरा, करीनेसे बहाये गये बड़े-बड़े बाल अगुरुकी महकसे बसे हुये, हाथमें घड़ी—निरालाजी 'भद्र पुरुषों' में भी अन्यतम लगते थे। बहुत कम लोगोंको ऐसा अद्भुत और आकर्षक व्यक्तित्व प्राप्त होता है। मैली लुंगी पहने, नंगे पैर, नंगे बदन, छोटे बालों और बढ़ी हुई हजामतके साथ भी 'निराला' निराला ही रहे, और अपने ढंगसे उतने ही दिव्य लगे, जितने कि परम सभ्य कलकतिया बंगाली वेशमें। इधर दाढ़ी और गेरुये वस्त्रोंमें भी निरालाजी वैसे ही दिव्य लगते हैं।

महाकविके मिज़ाजमें रियासती बू-बास भी खूब रही है। भोजनकी अच्छी परख, अच्छी चीजोंका शौक, अपने खर्चसे महफिलें करानेका हौसला रखना, बैरा-ब्वाय वर्गको बड़ी-बड़ी 'टिप्स' देना—यह रियासती ज़ोम उनमें खूब रहा है। उनकी रियासत और दरिद्रता ताने-बानेकी तरह साथ-साथ चली है। फिर भी रियासतके दिन तीज-त्यौहारोंकी तरह इनेगिने ही आते रहे। अधिकतर घोर आर्थिक संकटके अंधेरे पाखमें ही उन्होंने अपने जीवनके दिन बिताये हैं।

एक दिन चिराग़ जलेके समय मैं निरालाजीके घर गया। तब निरालाजी भूसामँडी हाथीखानामें रहते थे। ऊपरके खण्डमें, लोहेके टट्टरके पास, सामनेवाले हिस्सेमें एक पटावके नीचे निरालाजीका रसोई घर था। मिट्टीके तेलकी ढिबरी जल रही थी। चूल्हे पर शायद सब्ज़ी पक रही थी। कुछ ही देर पहले उन्होंने

गोश्तकी हांडी चूल्हेसे उतार कर जमीन पर रक्खी थी। जिस समय मैं पहुंचा, वे पके मांसको ठण्डा करनेके लिये उसे एक पत्तलमें निकाल कर रख रहे थे। टट्टरके दूसरी तरफ जीनेके पास ही खटिया पर बैठा हुआ मैं उनसे बातें करने लगा। देखते-देखते ही पन्द्रह-बीस छोटी-छोटी चुहियां पत्तलके चारों तरफ इकट्ठा हो गईं। गरम मांसको लेकर पत्तलके किनारे भागनेमें उनकी फुर्ती हमारे मनोरंजनका साधन बन गई। चुहियां पत्तलके आस-पास, निरालाजीके चारों ओर निर्द्वन्द होकर घूम रही थीं। एक चुहिया निरालाजीकी लुंगीके लटके छोरसे चढ़ती हुई उनके दाहिने पैर पर आ गई। निरालाजी चुपचाप मुस्कराते हुये उसका यह अभियान देखते रहे। मुझे गुलीवर और लिलीपुटियन समाजका ध्यान हो आया। चुहिया घुटने तक पहुंची, तब निरालाजीने अपनी टाँगको हल्का-सा झटका दिया। चुहिया फौरन ही कूद कर पत्तलके पास चली गई। निरालाजी मेरी ओर देखकर बोले: "कहते हैं, जहां चुहियां अधिक होती हैं, वहां दरिद्रता भी होती है।"

वह बात और वह दृश्य मैं शायद कभी भी न भूल सकूंगा। शाहंशाह निराला कभी-कभी अपनी दरिद्रता पर बहुत दुखी होते थे। लेकिन सबसे अपना रोना रोनेकी आदत उनमें कभी नहीं रही।

निराला जीवन-समरके अजेय योद्धा हैं। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। और इसलिये वे आज इतनी पूजा पा रहे हैं।

एक समयमें निरालाजी ऐसी पूजा पानेके लिये किसी हद तक लालायित रहा करते थे। तब उन्हें समाजसे अधिकतर विरोध ही मिला। और अब, जबकि समाज उनकी इतनी पूजा कर रहा है, वे उससे अलिप्त हो ऐसी मानसिक अवस्था में रहने लगे हैं, जिसमें उनका जीवन 'चिरकालिक क्रंदन' बन गया है। निरालाजी के समान अनन्त आपदाओंका बराबरीसे सामना करने वाला कवि ही यह प्रार्थना कर सकता है—

"मेरा अन्तर वज्र कठोर
देना जी भरसक झकझोर,
मेरे दुखकी गहन अंधतम
निशि न कभी हो भोर,
क्या होगी इतनी उज्ज्वलता
इतना बन्दन-अभिनन्दन ?
जीवन चिर-कालिक क्रंदन !"

* * *

सन् १९३२ से सन् ३९ तक मेरा निरालाजीका साथ रहा है। मैंने ही नहीं, मेरे बच्चों तकने उनका स्नेह पाया है। मेरे बड़े लड़केसे, जो उस समय तीन-चार वर्षका था, उनकी बड़ी दोस्ती थी! बच्चोंके साथ निरालाजीकी खूब दोस्ती हो जाती है। (बच्चका) दूध पिलानेसे लेकर! कबड्डी खेलने तकमें निरालाजी उनके 'समवयस्क' होकर याराना निभाना खूब जानते हैं।

निरालाजीके यहाँ नये लेखकोंका मजमा जुड़ता था। कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह, रामरतन भटनागर 'हसरत', आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री, स्व० बलभद्र दीक्षित 'पढ़ीस', रामविलास शर्मा, इन सबसे मेरा परिचय निरालाजीके यहां ही हुआ। स्व० पढ़ीस और रामविलास मेरे जीवनके अति निकट आ गए। रामविलास पर निरालाजीका आरम्भसे ही अपार स्नेह रहा है। लखनऊ यूनिवर्सिटीने उन्हें डाक्टरेटकी उपाधि तो बादमें दी, पहले निरालाजीने ही उन्हें 'डाक्टर' बनाया। मेरा ख्याल है, जब रामविलास ने शायद एम० ए० भी पास नहीं किया था, तबसे वे उन्हें 'डाक्टर' कहने लगे थे।

नये लेखकोंसे निरालाजी बराबरकी लड़त लेते थे, उन्हें जबर्दस्त प्रोत्साहन देते थे—और आज भी नये खूनको बढ़ावा देनेमें अपनी मिसाल वे आप ही हैं!!!

●

विदेह!

कई वर्ष बीते, गेरूये वस्त्रोंमें हठात् निरालाजीके दर्शन किये थे। विह्वल और विभोर, मैंने महसूस किया कि पुष्पोंका मकरन्द-पराग किस कठिनाईसे मधुमक्खियां एकत्र करती हैं और फिर उसे मधुमें परिणत करती हैं! उसी तरह हमारा यह महाकवि कितनी कठोर प्रवञ्चनाओंको सहन करता हुआ हमें साहित्यका चरम मधु प्रस्तुत करता है। निश्चय ही दुःसाध्य अनुभूतियोंके ये मधुप हैं और उसी रूपमें मैंने उस घड़ी उन्हें स्वीकार किया था।

बादमें यह आम चर्चाका विषय था कि निरालाजीका स्वास्थ्य और उनका मानस चिन्ताग्रस्त है। मैंने कभी स्वीकार नहीं किया, वे विक्षिप्त हैं। लोग कहते हैं कि वे स्वगत-भाषण करते हैं। मैं यह नहीं मानता। मैं यह मानता हूं कि वे एकान्त-भावसे इस स्थूल शरीरसे मुक्त, सनातन संस्कृतिकी गीतिकाके छन्द जरा मुखरित भावसे गूथा करते हैं। राजा जनककी हथेलीपर आंच रख दी जाती थी, पर उन्हें उसकी पीड़ा नहीं होती थी। निरालाजी भी आज विदेह हैं! ऐसे विदेह कि जो अभी एक कलिका-रूपमें हैं और जिसका पुष्पीकरण होना अभी शेष है!

—*श्री हरिहरनाथ मिश्र*

महाकवि निराला : लघु संस्मरण

श्री बेढ़ब बनारसी

निरालाजीसे मेरा पहला साक्षात्कार प्रसादजीके घर पर हुआ था। उन दिनों प्रसादजीका मकान साहित्यकारोंका तीर्थ था। यही नहीं कि सब लोग उस प्रतिभा का दर्शन करना चाहते थे, वहां स्वागत-सत्कार भी बड़े प्रेमसे हुआ करता था। उस समय उनकी काली घुंघराली लटें रसखानके घनश्यामकी याद दिलाती थीं। हृष्ट-पुष्ट शरीर, पीन वक्ष, विशाल नयन बरबस ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे। तबसे अनेक बार भेंट हुई और वह भेंट बन्धनकी गांठ हो गई और हरबार दृढ़ होती गयी। उस समय जो नवीन शैलीकी कविता चली, जिसके विकास और पुष्टिमें निरालाजीका बहुत अधिक योगदान था, उसकी मैंने प्रशंसाकी। निरालाजीको यह कुछ विचित्रसा जान पड़ा, क्योंकि प्रायः लोग उनकी रचनाकी निन्दा ही कर रहे थे। हम लोग और निकट आये।

निरालाजी सजीव सहृदयता हैं। सैकड़ों अवसर ऐसे आये हैं और उनके सम्पर्क में आनेवालोंको इसका पर्याप्त अनुभव हुआ होगा, जब उन्होंने अपनी परवाह न करके, अपनेको असुविधामें डालकर अपने साथियों, अपने मित्रोंको आराम पहुंचाया है। नैनीतालमें सरकारी कालेजके होस्टलमें हम लोग ठहरे हुए थे। उनका कमरा पहले पड़ता था, मेरा बादमें। एक रात मैं अधिक रात तक बाहर घूमता रहा। फलतः सब होटल बन्द हो गये। मैं बिना खाये लौटा। मेरे साथ पण्डित श्याम-नारायण पाण्डेय भी थे। निरालाजी अपने कमरेका दरवाजा खोले, तकियाके सहारे आधा लेटे हुए थे। सामना होते ही पाण्डेयजीने कहा, "आज तो बेढ़वजीने एकादशी रखा दी।" निरालाजीने बुलाया, पूछा, "बात क्या है।" बातें सब हँसीमें हो रही थीं। निरालाजीने कहा—"अभी-अभी मेरा भोजन होटलवाला रख गया है। मैंने भी अभी नहीं खाया है।" और उन्होंने जबरदस्ती खिलाया। उनके पास केवल एक व्यक्ति, उन्हींके लिये, भोजन आया था। पाण्डेयजीने धार्मिक दृष्टिसे भोजन नहीं किया। निरालाजीने अपने लिये दो फुलके, थोड़ासा चावल, रसा इत्यादि रखकर सब मुझे खानेके लिये दे दिया। कोई तर्क, किसी प्रकारका इंकार उनके स्नेहके आग्रहके आगे न चला। इस प्रकारकी पचासों घटनाएं लिख सकता हूं।

एक बार कवि गुलाबजीने बहुत आग्रह किया कि मेरी पुस्तकपर निरालाजीसे

भूमिका लिखा दो। पुस्तक छपकर उसीके लिये रुकी थी। उन दिनों निरालाजी लखनऊ रहते थे। गुलाबके साथ इनके निवास-स्थानपर गया। सब कुछ अस्तव्यस्त पड़ा था। तबीयत उनकी ठिकाने न थी। पहले तो बहुत इधर-उधरकी बातें, परमहंस रामकृष्णसे लेकर महारानी विक्टोरिया तक होती रहीं। फिर मैंने आनेका अभिप्राय बताया। तुरन्त उन्होंने कलम उठायी और संक्षेपमें बहुत सुन्दर भूमिका लिखी। यह नहीं कहा जा सकता था कि निरालाजी स्वस्थ चित्त नहीं हैं। इससे भी बढ़कर और बात थी। उनके यहां खाने-पीनेका तो कुछ सामान था नहीं। होटलका ही सहारा था। चलते समय वह हमारे साथ चलने लगे। हम लोगोंने बहुत मना किया। परन्तु उन्होंने न माना। हठपूर्वक अमीनाबाद साथ आये। वहां एक दूकान पर हम दोनोंको उन्होंने चाय पिलायी। पैसा भी उधार ही रहा। भला हम लोगों में पैसा देनेका साहस कौन करता!

इधर कुछ महीने होते हैं, प्रयाग जानेका अवसर मिला। स्वभावतः दारागंज भी गया। निरालाजी ज्वरसे पीड़ित थे। हाथमें भी पीड़ा थी। किन्तु खाटसे उठकर अपने हाथसे हस्ताक्षर कर अपनी नयी पुस्तक उन्होंने दी। कमलाशंकरसे कहा—बेढ़बजीके लिये चाय बनवाओ। *उसका पैसा मेरे हिसाब में रहेगा।* चाय कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसका पैसा अखरे। फिर कमलाशंकर भी मित्र ही थे। किन्तु उनका निजत्व इससे झलकता है। उनकी उदारताके कितने उदाहरण गिनाऊँ।

हमलोगोंके भैया साहब, पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदीके यहां दारागंजकी बगिया में निरालाजी कुछ दिनोंतक रहते थे। उनकी भी मेरे ऊपर बड़ी कृपा है। जब प्रयाग जाता था, उन्हींके यहां ठहरता था। जाड़े का दिन था। सवेरे-सवेरे गाड़ीसे उतरकर दारागंज गया। भैया साहबके कमरेमें जानेसे पहले बगियाकी ओर गया; तो देखा, निरालाजी खाटपर पड़े जाग रहे हैं और फटी-पुरानी रजाई ओढ़े हैं। उससे कितनी सरदीका बचाव होता होगा, कह नहीं सकता। मैंने भैया साहबसे कहा—"निरालाजीको कष्ट हो रहा है। उन्हें एक लिहाफ बनवा दीजिये।" उन्होंने अपने स्वाभाविक ढंगसे बताया, "परसों ही नयी रजाई बनकर आयी थी। कल एक दरिद्र कांपते हुए भिखमंगेको उन्होंने दे दी।"

मैंने अपनी आंखों देखा है, अनेक कवि-सम्मेलनोंकी समाप्तिपर अथवा वहीं जेबमें नोटोंकी गुड्डी, जब जितनी भी रही, निकालकर कितने कवियोंको दे दी। उनका नाम यहां लेनेसे लाभ नहीं।

प्रसादजीके निधनके बाद वह मेरे यहां ठहरा करते थे। यह उनका निरा स्नेह था। क्योंकि मुझ जैसा व्यक्ति उनका वह सम्मान नहीं कर सकता था, जो उनके लिये उचित था। मेरी पुत्रियोंसे तथा मेरे पड़ोसी मित्रोंसे वह आत्मीयके समान व्यवहार करते थे। और जबतक रहते थे, बड़ी सजीवता, चहल-पहल रहती थी। उन लोगोंके बाल-बच्चोंसे भी उनका घरवालोंसा व्यवहार होता था। चलते समय कुछ न कुछ लड़कियोंको दे जाते थे। एकबार गायघाटकी किसी संस्थाने बुलाकर अपने यहां उनको रखा। लगभग एक साल वह वहां रहे। सबेरे सदा दूसरे-तीसरे दिन, मेरे यहां चाय पीने वह आते थे। पापड़ उन्हें चायके साथ बहुत पसंद है। मांग-मांग कर खाते थे।

निरालाजीने पैसेकी कभी परवाह न की। जब पाया, कर्णके हाथों खर्च किया। यह नहीं कि उन्हें पैसा मिला नहीं। परन्तु उन्हें यदि कुबेरकी ताली भी मिल जाती, तो निश्चय ही भण्डार एक दिनमें खाली हो जाता। स्वयं कष्ट सह लेंगे, किन्तु दूसरेको कष्टमें वह देख नहीं सकते! कविता-हृदय जितना कोमल और भावुक होना चाहिये, इसके वह साक्षात उदाहरण हैं। उसमें सांसारिक व्यवहारिकता नहीं है। इसीसे इन्होंने इतना कष्ट उठाया है। और वह भूखे हैं स्नेहके। वह उन्हें नहीं मिला। उनकी मानसिक पीड़ा, उनकी मानसिक व्यथा इसीके कारण है।

कलाकार तो वह अद्वितीय हैं। मैं नहीं समझता कि इस समय हिन्दीका कोई कलाकार इस श्रेणी, इस प्रतिभा और इस सिद्धिका है! हिन्दी कविताको जो उन्होंने दिया है, वह और कोई दे नहीं सकता था। इस छोटे संस्मरणमें उनके साहित्यकी समीक्षाके लिये स्थान नहीं है। केवल इतना कह सकता हूं कि निरालाजीकी रचनाओंकी मौलिकता, उनका ओज, उनकी सुन्दरता, अतुलनीय है।



निरालाजीके शारीरिक सौंदर्यकी बात चल रही थी। और गोष्ठीमें मित्र अनेक थे। एक भाईने अधीर होकर पूछा, "इतना होते हुए भी, निरालाजीने अन्य लोकप्रिय कवियोंकी तरहसे खुले-छिपे रोमांस क्यों नहीं खेला?"

प्रश्न अप्रत्याशित था। पर उत्तर देने वाले भाई इस प्रश्न पर आनन्दित होकर मुस्करा पड़े। बोले, "एक बार एक श्रेष्ठ कलाकारकी एक श्रेष्ठ मूर्तिपर एक नवयौवना लुभा गई। और उसने कलाकारसे अपनत्व गाढ़े कसना चाहा। कलाकारने उससे सिर्फ इतना ही कहा, 'मुझ कलाकारसे वरण न करो। मेरे आर्टसे वरण करो। वही मंगलकारी होगा।' इसी प्रकार निरालाजीकी कलाको राष्ट्रकी देवियोंने किस मात्रा में अर्घ्य दान दिया है, यह बात किस तरह समझाई जाये?"

युग-प्रवर्तक कवि निराला : एक व्यक्तित्व

श्री महावीर अधिकारी

किसी देश अथवा जातिके इतिहासमें ऐसे क्षण बार-बार नहीं आते, जब कोई महापुरुष उसके मध्य अवतरित हो। आह, लेकिन कितनी विडम्बना है कि कोई महापुरुष उन्हीं के हाथों त्रास पाता है, जिनके उद्धार करने का संकल्प वह धारण करता है! महात्मा ईसाके साथ यही हुआ, सुकरातके साथ यही हुआ। गाँधीके साथ भी यही हुआ। सन्त होना इसी लिए विजेता होने से अधिक संकटापन्न कार्य माना गया है। सच भी यही है कि जीर्ण-शीर्ण-सा सन्त बड़े विश्व-विजेतासे अधिक क्रान्तिकारी होता है। सन्तोंने युग बदल दिये। नए युगोंकी स्थापना कर दी। कच्छप-शक्ति सन्तका मुकाबला ढाल-तलवार वाला योद्धा करे भी कैसे? उसका वार किसीके हाथ नहीं पड़ता। हाँ, उसका शरीर सबके लिये सुलभ होता है। उसके शरीरको कोई भी समाप्त कर सकता है!

जितनीही विशाल युगान्तरकारी हस्ती किसी सन्तकी होती है, उतनीही दारुण यन्त्रणायें उसके समाजके हाथों उसे सहनी पड़ती हैं। निरालाजी हिन्दी साहित्यमें उसी महान क्रान्तिकारी परम्पराके उन्नायक बनकर अवतरित हुए। उनका साहित्यिक और सामाजिक दोनों प्रकारका व्यक्तित्व महान है। साहित्य और कवित्व दोनों साथ-साथ ही पनपते हैं।

जिसके काव्यमें जितना ओज, प्रसाद, चैतन्यता है, उतनाही वह जीवित है और जितना रस-परिपाक उसके विभिन्न अंगोंमें होता है, उतनाही वह स्थाई और सम्पुष्ट होता है। रसोंको काव्यकी आत्मा कहा जा सकता है। आत्माकी अभिव्यक्तिसे जिस प्रकार प्राणोंमें एक व्यक्तित्व पैदा हो जाता है, वैसेही काव्यकी स्थिति भी है। काव्यसे काव्यकार, साहित्यसे साहित्यकारके अन्तरपटकी एक झाँकी हमें मिल जाती है। इस हेतु व्यक्तित्वके वैज्ञानिक विश्लेषणको व्यक्ति-पूजा नहीं, वरन् साहित्यकारके साहित्यको समझनेके लिये एक प्रयास कहा जाना चाहिए।

पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आधुनिक युगके उस प्रहरमें साहित्य-प्रांगणमें आये, जिस समय हिन्दी साहित्यमें राष्ट्रीय जागरणकी छाया व्याप्त हो चुकी थी, किन्तु काव्यकी पदावलियां प्राचीन छन्दबद्ध प्रणालियों पर चली आ रही थीं। मध्ययुगके प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने जिस प्रकार काव्यका रीतिकालिक विलास-

वादितासे उद्धार किया, 'निराला'जीने मात्रिक और वर्णिक माप-तौलसे कविताको मुक्त किया। उनकी उर्वरा-मेधासे अनेक स्वस्थ काव्य-सरिणियाँ प्रस्फुटित हो उठीं। उनके व्यक्तित्वके माध्यमसे उर्दू शायरीका प्रवाह, अंग्रेजी साहित्यकी स्वच्छन्दता और वेगको लेकर हिन्दीका काव्य गतिमान हो उठा। आचार्य द्विवेदीने भाषाके व्याकरण को सुसंस्कृत रूप देकर साहित्यको परिमार्जित किया और हिन्दीको उसका आधुनिक रूप प्रदान किया, किन्तु निरालाजी ने भारतेन्दु बाबू के समान काव्यधारामें अभूत-पूर्व क्रान्ति की। निश्चय ही आचार्य द्विवेदी ने हिन्दीके लिए रचनात्मक सेवाएं कीं। काव्य में रचनात्मक क्रांति करने वाला 'निराला' युग-प्रवर्तक है। आचार्य द्विवेदीका साहित्य में वही स्थान होना चाहिए, जो एक सुधारकको मिल सकता है, किन्तु 'निराला' हिन्दीके क्रान्तिकारी साहित्य-निर्माता हैं।

व्यक्तित्व

निरालाजीका व्यक्तित्व दर्शन से भी क्रान्तिकारी प्रतीत होता है। अखिल भारतीय व्रज साहित्य मण्डल के निमन्त्रण पर जिस समय निरालाजी दिल्ली आ रहे थे, तो कुछ दिन पूर्वसे ही दिल्लीके साहित्यकारों और साहित्य-प्रेमियोंमें एक उत्सु-कता प्रबल हो उठी थी। सौभाग्य से राजधानीसे एक स्टेशन पूर्वही मैं इस विल-क्षण आचार्यके दर्शन कर सका। यदि उनका नाम ही 'निराला' न होता, तो शायद मैं उन्हें कभी न पहचान पाता। निरालाजीका व्यक्तित्व इतना विराट् है कि केवल मौखिक परिचयके बलपर ही आप उन्हें लाखोंकी भीड़में पहिचान लेंगे। निरालाजी आगे बढ़कर अपने निकट आने वालेको और भी निकट कर लेते हैं। उनके नेत्र मस्तकमें ऐसे ही दीप्त होते हैं, जैसे किसी दूरन्त बीहड़ बन की यात्रा करके केहरि अपनी गुफाके द्वारपर सो जाये और उसके ज्योतित नेत्र उन्मीलित रह जायं। उनकी वज्र देह हमें अपने पूर्वजोंकी कल्पना करनेमें सहायता करती है। उनका दीर्घ आकार, भव्य और दार्शनिक मुद्रा, प्रथु वक्षस्थल और बलिष्ट शरीर कभी श्रीमती सरोजनी नायडू को उनके यूनानी दार्शनिक होने का धोखा दे चुके हैं। उनका साहित्य भी बहुमुखी प्रतिभाका है। वीर, श्रृङ्गार, करुणा, हास्य, व्यंग्य सभी क्षेत्रोंमें उन्होंने असाधारण परिचय दिया है। दिल्लीमें कवि सम्मेलनका सभापतित्व करते हुये आपने जब अपनी "जूहीकी कली", "कुकुरमुत्ता" और "मिर्जा राजा जयसिंहको शिवाजीका पत्र" सुनाया तो पत्र सुनाते समय वीरत्वकी जो अभिव्यक्ति उनके द्वारा हुई, वह असाधारण थी। 'निराला' जी संगीत-मर्मज्ञ साहित्यकार हैं। उनके इसी प्रवासके

मध्य सर्वप्रथम मुझे उनकी वाणीसे ही उनकी कविता संगीत-ध्वनिमें सुननेका सौभाग्य मिला है, किन्तु 'निराला' का काव्य कंठ और संगीतका दास नहीं है। उस काव्यमें कितने प्राण हैं, उसका आकलन वह और भी अधिक कर सकेंगे, जिन्होंने उनके मुखसे उनकी कविता सुनी है। अपने काव्यको घोषित करता हुआ वह अनायास युग-पुरुष होनेका अपना दावा पूर्ण करते हैं। निश्चय ही यदि 'निराला' को अपने क्रान्तिपथ पर निरन्तर साहित्यिक मोर्चोंसे वज्र लोहा लेना न पड़ता तो वह रवीन्द्रके समान प्राच्य ज्ञान-गरिमाके ध्वजाधर सिंह होते और आत्मा उनकी यदि रसरंजित और विमल शृंगारसे विभूषित न होती, *तो दुनियाके इतिहासमें वह कहीं मार्क्सके निकट बैठे दीख पड़ते।* तथापि जिस परिमाणमें 'निराला' जीने साहित्य रचना की है, वह उपेक्षणीय नहीं है। उन्होंने तुलसीदास, अनामिका, परिमल, गीतिका, प्रबन्ध-पद्म, कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा, कुकुरमुत्ता इत्यादि मौलिक ग्रंथ साहित्यको भेंट दिये हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने अन्य भाषाओंके लगभग १८ ग्रन्थ हिन्दीको अनुवादके रूपमें प्रस्तुत किये हैं। अनामिकामें 'रामकी शक्ति पूजा' को पढ़ और सुनकर लोगोंको कंपकपी चढ़ती हमने देखी है। 'परिमल' की 'विधवा' ने कितने पाषाण-हृदयोंको करुणा-विगलित न किया होगा। 'निराला' का उच्च आध्यात्मिक स्तर साधारण बुद्धि द्वारा ग्रहण किया जाना थोड़ा कठिन होता है। आचार्यत्वके दर्शन 'निराला' के सम्पूर्ण साहित्यमें होते हैं। दार्शनिक-पुट होनेसे इस सूफ़ीके सूत्रोंके रहस्य-सम्पुट खोलते थकान-मिश्रित आह्लादकी अनुभूति होती है। 'निराला' जैसे प्राणवान व्यक्तित्व कभी-कभी ही साहित्यमें अवतरित होते हैं। दुर्भाग्य कि उन्हें अपने अस्तित्वको बनाए रखने भरके लिये परिस्थितियोंसे यहां तक लड़ना पड़ा कि उनकी शक्तियाँ भी समयसे पहिले शिथिल हो गई हैं। उनके मुखकी ओर देखकर अपनी अशक्तता और दुर्भाग्यपर बरबस पश्चाताप करनेको जी चाहता है।

युग-पुरुष

निश्चय ही ऐसा पुरुष युग-पुरुषके रूपमें पूजनीय है। पर उनकी स्थिति तो यहां तक पहुंच गई है कि आज हम उनके विक्षिप्त होनेकी आशंका करने लगे हैं। मस्तिष्ककी उत्तेजित अवस्था में काफी समय ऐसा गुजारा है कि यकायक सम्भावण करते-करते आप उग्र हो उठते थे और पाखण्डी रङ्गोले स्यारों पर वाक् प्रहार करने लगते थे। हिटलर, स्टालिन और चर्चिलके समकक्षी भी कई बार वह अपने को घोषित करने लग जाते थे। लोग उनकी इस स्थितिको विक्षिप्तता कहते हैं;

मैं तो यह कहूंगा कि इस दुनियाके पाखण्डोंसे और मिथ्या मानके मदमें चूर आदर्शों की डींग हाँकने वाले लोगोंसे लड़ते-लड़ते उनकी मनःस्थिति पर ऐसी प्रतिक्रिया हुई है कि वह कल्पना जगतमें सुखकी कोर खोज लेना चाहते हैं। अगर वह अपनेको चर्चिल, स्टालिन, रूजवेल्टसे बड़ा मानते हैं, तो राम बादशाह भी अपनेको इस अखिल ब्रह्मांडका स्वामी पुकारते थे। उनके कर्ण-कुहरोंमें भी तो अनहदका राग ध्वनित होता था। किन्तु 'निराला' जी के इस दुनियासे विलग हो जानेकी आशा हमें इतनी शीघ्र न थी। उनके हृदयको ठेस लगी है।

संरक्षक

पर अब भी तरुणोंको देखकर उनके प्राण कोटि-कोटि आशीर्वाद देनेके लिये विकल हो उठते हैं। उस दिन उनके शब्दोंको सुनकर हर्ष और उत्साहके आँसू निकल पड़े, जब उन्होंने कुछ तरुणोंको लक्ष्यकर कहा, 'अरे, घबराते क्यों हो पट्ठो! तुम्हारा शरीर विपत्तियोंको सहते-सहते तपकर कुंदन हो गया है। आने वाली क्रांतिमें तुम्हारा क्या खो जायगा? तुम्हारा व्यक्तित्व तुम्हारी बाहु-बलकी कमाई है। भय तो उन्हें है, जो पूंजीपति हैं और जिनकी पूंजी हटा लेनेसे पतिके रूपमें नपुंसक अवशेष रह जाता है!"

कितने आश्चर्यका विषय है कि जिस महापुरुषके संघर्षकी चर्चा कर हमारा हृदय आर्द्र हो उठता है, वही एक तरुणकी कवितापर कवि सम्मेलनमें दिये जानेवाले पुरस्कारोंमें सबसे ऊंची रकम अपनी ओरसे घोषित करे। 'निराला' किसीके अभावको अपने अभावसे भी अधिक समझते हैं। राह चलते अभाव-ग्रस्तोंको अपने कपड़े और कम्बल तक उतार कर देते वह देखे गये हैं। आज नित्यही लोग उनकी सहायता करनेकी चर्चा उठाये रहते हैं, किन्तु 'निराला' जीको सहायता देना आसान कार्य नहीं है। हिन्दीका यह महाव्रती बङ्गालके राष्ट्र-कवि काजी नजरुल इस्लामकी तरह २००) रु० मासिक वृत्ति तो क्या, १०००) मासिक वृत्ति भी स्वीकार करेगा, ऐसी आशा नहीं की जा सकती। 'निराला' जीको इस समय केवल सरल रूपमें यही सहायता दी जा सकती है कि हम उनके साहित्यको अधिकसे अधिक मात्रामें खरीदें और उनके प्रकाशक उनसे अधिक उदार व्यावसायिक सम्बन्ध स्थापित करें। केवल यही मार्ग उनके ऋणसे उऋण होनेका है!!

जिस नवीन पीढ़ीका पथ अपने रक्तदानसे इस युग-पुरुषने प्रशस्त किया है, वह अब समर्थ हो चला है।

तुमने रूढ़िवादी परम्पराओंको ठोकर मारकर तोड़ दिया, तुमने लक्षाधिपतियों की दान-वीरताको अपना सर्वस्व लुटाकर लज्जित कर दिया। जितने दिन तुमने साहित्यको अपनी आत्माके ओजसे मण्डित किया, तुम्हारा सानी कहीं दिखाई नहीं दिया। तुम केहरिके समान जिधर नजर उठाते थे, दिशाएं कांप उठती थीं। तुम जिधर कदम उठाते थे, पृथ्वी झुक जाती थी! तुम साहित्यके जिस अंशको स्पर्श करते थे, वह कुंदन हो जाता था। तुमने आजादीके गीत गाए, तुमने दीन-दुखियोंके गीत गाए! तुमने अपने आत्मजोंको परिक्लान्त होकर टूटते देखा, पर महात्मा मार्क्सकी तरह तुमने कभी दूसरे पक्षके सामने सिर नहीं झुकाया। तुम्हें देखकर देखने वालेकी आंखोंमें ऊंचाई पैदा होती है, तुम्हें देखकर युवकोंकी मांस-पेशियोंमें थिरकन पैदा होती है। तुम्हें देखकर कबीरकी अक्खड़ता, सन्त तुलसी-दासका विनय और विश्वकवि रवीन्द्रकी महामहिम मनस्विता साकार हो उठती है! हम तुम्हारे ऋणकी महिमाको पहिचानते हैं। आगे आनेवाली पीढ़ी कभी यह विश्वास न करेगी, कि इतना औघढ़ व्यक्तित्व कभी इस जमीनपर डोलता-फिरता भी होगा। पर तुम अपने व्यक्तित्वकी ऊँचाईका इतना प्रबल साक्ष्य छोड़ जाओगे कि मानवता तुम्हें अपने इतिहासमें सानुराग सहेज कर रखेगी! तुम एक बार फिर अपने मानवी स्वरूपके प्रति सचेत होओ। जिस व्रतको तुमने धारण किया था, वह अभी अधूरा पड़ा है। इस अधूरे संकल्पको पूरा करो और शाप-ग्रस्त मानवता का उद्धार करो।

तुम हो, तो हमें विश्वास है कि हम हैं! तुम हो, तो हमें विश्वास है कि सत्यकी जय होती है। तुम हो, तो हमें विश्वास है कि मनुष्यके लिये इतना महान हो सकना कवि-कल्पना मात्र नहीं है।

योगीराज शंकरकी तरह तुम अपने इस ताप-वेशको उतार दो और एकबार कल्याणकारी नेत्र खोलो, जिससे इन्सानियत धन्य हो जाए; जिससे इन्सानियत का कारवां अपनी नई मंजिल तक पहुंच जाय।



←.................... स्व० श्रीमती सरोजनी नायडूने जब पहली बार आपके इस रूपमें दर्शन किये तो उन्हें भ्रम हुआ कि जैसे कोई साक्षात यूनानी दार्शनिक उनके सामने उपस्थित हो गया है।

महाकविके साथ कुछ क्षण

श्री गणेशप्रसाद अर्गल

लगभग १० वर्ष पूर्व, ग्रीष्मकालकी जलती हुई एक दोपहरीमें अनायास ही महाकवि 'निराला' से मेरा प्रथम परिचय मेरे स्टूडियो ही में हुआ था। प्रयागके प्रमुख साहित्यिक तथा पत्रकार श्रीकृष्णदासजीको किसी विशेष कार्यके लिये 'निराला' जीके एक चित्रकी आवश्यकता थी और उन्होंने यह कार्य मुझसेही करानेका निश्चय किया था।

'निराला' जीकी साहित्य-क्षेत्रमें प्रशंसा मैं सुन ही चुका था। परन्तु साहित्यिक न होनेके नाते, उन्हें स्वयं देखनेका अभी अवसर प्राप्त नहीं हुआ था। मैं 'निराला' जीको अपने स्टूडियोमें ले गया, तथा केमरा ठीक करके उनका पोज (Pose) साधारण रीतिमें ही बनाना चाहा। जैसे ही मैं उनके समीप पहुंचा, निरालाजी अपने स्वाभाविक गम्भीर स्वरमें बोले, "देखिये! तस्वीरमें मेरा वक्षस्थल पूरा आना चाहिये।" मैं निस्तब्ध होकर उनकी ओर अच्छी तरहसे देखने लगा। उनके चेहरेमें एक विचित्र कांति थी। साधारण कुरता, अस्तव्यस्त बाल तथा 'फोटोग्राफिक पोज' के लिये कोई विशेष तैयारी न होने पर भी 'निराला' जी में मैं एक विचित्र सुन्दरताका अनुभव कर रहा था। इस तेजस्वी कलाकारका व्यक्तित्व केमरेकी फोकसिंग स्क्रीन (Focussing Screen) पर ही मैं समझ गया। श्रीकृष्णदासजीसे परिचय पूछने पर मालूम हुआ कि मैं श्री निरालाजीकी ही तस्वीर खींच रहा था!

उसी दिनसे मेरी यही हार्दिक इच्छा रही कि किसी समय फिर मैं 'निराला' जीके कुछ चित्र अलग-अलग ढंगसे लूँ। पिछले वर्ष ही स्थानीय 'काव्यलोक' की ओरसे 'निराला' जीकी वर्षगांठ विस्तृत पैमाने पर मनाये जानेका आयोजन किया गया था। उसी अवसर पर मुझसे 'निराला' जीके एक सुन्दर चित्र उन्हींके निवास स्थान पर खींचनेका अनुरोध किया गया। मेरे मनमें पहिलेसे ही यही उत्कंठा थी। अतः एक निश्चित समय पर अपना केमरा लेकर दारागंज पहुंचा। 'काव्यलोक' के कुछ सदस्य-गण भी मेरे साथ थे! 'निराला' जीके निवास स्थान पर पहुंचने पर सबने देखा कि 'निराला' जी वहाँ नहीं हैं। सदस्योंने उनकी छान-बीन की। पता लगा कि 'निराला' जी एक तंग गलीमें छोटेसे कमरेमें बैठे हैं। सदस्योंने निराला जीसे उनके चित्र खींचनेके लिये अपने स्थान पर चलनेका अनुरोध किया, परन्तु

उन्होंने स्वीकार नहीं किया। निराश हो, सब मेरे पास लौट आये और मुझे सब हाल बतलाया। उनके एक सुन्दर चित्र लेनेकी मेरी आन्तरिक अभिलाषाने मुझे निरालाजीके पास स्वयं जानेके लिये बाध्य कर दिया।

इधर कुछ दिनोंसे 'निराला' जी प्रायः अंग्रेजी भाषामें बोलते हैं। उनके विषय विभिन्न हुआ करते हैं—कभी साहित्य, कभी राजनीति पर, कभी तर्क-शास्त्र पर, तो कभी दर्शन-शास्त्र पर। मेरे पहुंचने पर वे मुझसे एकाएक बोल उठे:

"So you have come to expose me!" "Yes Panditji, if you permit me to do so." मैंने उत्तर दिया।

"But I can not move out of the room. Do you have courage enough to expose me right in this room?" वे बोले।

"Panditji! let me try."—केवल यह कहकर ही मैं केमरा लेने वापिस आ गया। रास्तेमें मैं यही सोच रहा था कि इस छोटीसी अंधेरी कोठरीमें जिसमें केवल एक ओरसे ही थोड़ा सा प्रकाश आ रहा है, मैं किस प्रकार 'निराला' जीका सुन्दर चित्र लेनेमें सफल हो सकूंगा? अपनी योग्यताका प्रदर्शन आज ही मुझे करना होगा। केमरा लेकर मैं फिर 'निराला' जीके पास पहुंचा और केमरा-स्टैंड पर उस कमरेके भीतर ही लगाना आरम्भ कर दिया। इसी बीच मैं 'निराला' जीसे बोला—"Panditji! you are putting me to a severe test today."

"Well test? you must know that I have been playing with Graph and Phone all my life."

—निरालाजीने उत्तर दिया। वास्तवमें निरालाजीका सारा जीवन Graph (चित्रण) तथा Phone ('ध्वनि') के अन्तर्गत ही बीता है—उनकी साहित्यकी अनुपम साधना किसीसे छिपी नहीं है। युग-प्रवर्तक 'निराला'का चित्र भी निराला ही होना चाहिये, यही मेरी धारणा थी। कलात्मक दृष्टिसे अपना केमरा इधर-उधर करके मैं Exposure देनेके लिये तैयार हो गया। निरालाजीकी गम्भीर मुद्रामें मन्द हास्यकी रेखा सहित उनका चित्र मैं लाना चाहता था, जिसके लिये मैंने निरालाजीसे कहा:—"Panditji, I hope you will give a smile now".

पण्डितजीने वास्तवमें मुस्करा दिया और जिस ओरसे प्रकाश आ रहा था, उस ओर देख पड़े। मैंने केमरेका 'शटर' (Shutter) दबाकर तस्वीर खींच ली।

निरालाजीका यह पोज जो इसी अभिनंदन ग्रंथमें मुखपृष्ठके सामने (Frontispiece) छपा है, वास्तवमें कलात्मक है। Photographic Technique के अनुकूल Light and shade के सिद्धांतोंके आधारपर ही मैंने निरालाजीकी इस Profile का अध्ययन किया था। मुझे विश्वास है कि संसारकी किसी भी प्रदर्शनीमें यह चित्र अपना स्थान रख सकता है! इसका श्रेय मुझे नहीं है परन्तु उनके अद्वितीय features तथा चेहरेके perfect contours को ही है। अपने चित्र खिचानेके लिये निरालाजीको स्वयं रुचि नहीं है। उन्हें एक क्षणके लिये भी फोटोग्राफीके कलात्मक दृष्टिकोणसे एक स्थानपर बांध रखना अत्यन्त दुर्लभ है...मैं यह अनेकों बार अनुभव कर चुका हूं। फिर भी मैं एक बार फिर इस महाकविको अपनी कला द्वारा श्रद्धांजलि अर्पित करनेका अवश्य ही प्रयत्न करूंगा।*



यो "निरालो" निरालो ही है। कामको निरालो, शानको निरालो, शरीरको निरालो, चालको निरालो। भेषको निरालो, बालको निरालो, बातको निरालो। दिलको निरालो, कविताको निरालो, लिखणेको निरालो, कलमको निरालो। हिन्दीको निरालो, कलकत्ताको निरालो, देशको निरालो। धुनको निरालो, धर्मको निरालो। खानको निरालो, रहनको निरालो, साकीको निरालो, मस्तीको निरालो। जीवनको निरालो, खर्चको निरालो। हंसनको निरालो, "वाद"को निरालो, जातको निरालो। नहीं, कोई हो या निरालो, बेजोड़ है निरालो, बेजोड़ रहसी निरालो, अमर रहसी निरालो।

—श्रीलाल सांवलका

---

* श्री अर्गल जी प्रयागके साहित्यिक रुचि सम्पन्न एक लोक प्रिय आर्टिस्ट हैं। आपने कृपा पूर्वक अपना कलात्मक सौजन्य देते हुए इस ग्रंथको निरालाजीके अलभ्य चित्रोंसे विभूषित किया है। आपने इस ग्रन्थके लिये महाकविके सभी नाना चित्र विशेष रूपसे उतारकर दिये हैं। —सम्पादक।

निरालाजीका वंदनीय व्यक्तित्व

श्रीमती रामेश्वरी शर्मा एम० ए०

हम सभी जानते हैं कि निरालाजीका साहित्य सहजगम्य नहीं। अतएव लोकप्रिय भी नहीं। किन्तु यह मानना पड़ेगा कि उनका व्यक्तित्व हिन्दीके सभी कवियोंसे अधिक लोकप्रिय है। यह लोकप्रियता इस हद तक बढ़ गयी है कि जिस नगरमें वह एक बार कविता पाठ कर जाते हैं, वहाँके अधिकांश लोग उनके साहित्यको न समझ पाकर भी यह चर्चा करते हैं कि हिन्दीके 'निराला' सचमुच महाकवि हैं। इसमें सन्देह नहीं कि काव्यके प्रणेताके महान व्यक्तित्वसे ही हमें उसके काव्यको महा-काव्य कहनेकी प्रेरणा मिली है। लार्ड वायरनका आग्नेय व्यक्तित्व ही उनके साहित्य की रीढ़ थी। आस्कर वाइल्डका जो व्यक्तित्व था, वह उनके साहित्यमें भी था। 'उग्र' का जो व्यक्तित्व है, साहित्यमें भी उसीकी प्रतिच्छाया है। निरालाका व्यक्तित्व भी मौलिक है।

विशाल नेत्र

मनोविज्ञानके शास्त्रियोंने नेत्रोंको हृदयका वातायन कहा है। निरालाजीके विषयमें यह खोज अक्षरशः सत्य है। उनके नेत्र विशाल हैं। स्वप्निल हैं, और लाल रेखाओंसे पूर्ण। आज ६० वर्षकी आयुमें भी उस कमल-पुष्पसे सादृश्य रखते हैं, जिसकी बावड़ीका जल सूख गया है। पर उनमें अभी तक स्नेह और सौहार्द्र है, जो किसी व्यक्ति-विशेष पर केन्द्रित न होकर, समस्त मानव-समाजके लिए फैल गया है। आज भी उनके नेत्र क्षितिजके उस पार किसी महान और दिव्यलोकके स्वप्नसे भरे उनींदे, खुमारीयुक्त प्रतीत होते हैं। भलेही कुछ लोग उन्हें इस पृथ्वीका कलाकार कहने लगे हों, उन्हें पदार्थकी ओर आकर्षित पुकारते हों। किन्तु उनके नेत्रोंसे ऐसा नहीं झलकता। उन्हें कोई कमजोर आंखों वाला सहज ही रहस्यवादी कवि पुकार उठेगा। उनके नेत्रोंसे उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्वका प्रभाव दर्शकपर एक साथ पड़ता है!

उनका स्वर

उनका स्वर उनकी अद्भुत विलक्षणताका प्रकट विषय है। उनके कण्ठमें विप्लव के बादलोंका गंभीर गर्जन, जीवनके विरामका सांध्यगीत और सुखोच्छ्वासपूर्ण भैरवी भी है। उनके स्वरमें यदि जीवन-कल्लोलके पंचम स्वर कूकते हैं,तो साथ-साथ युक्त दार्शनिक स्वर भी प्रच्छन्न हैं। मैंने अपनी अबोध अवस्थासे लेकर आजतक एक

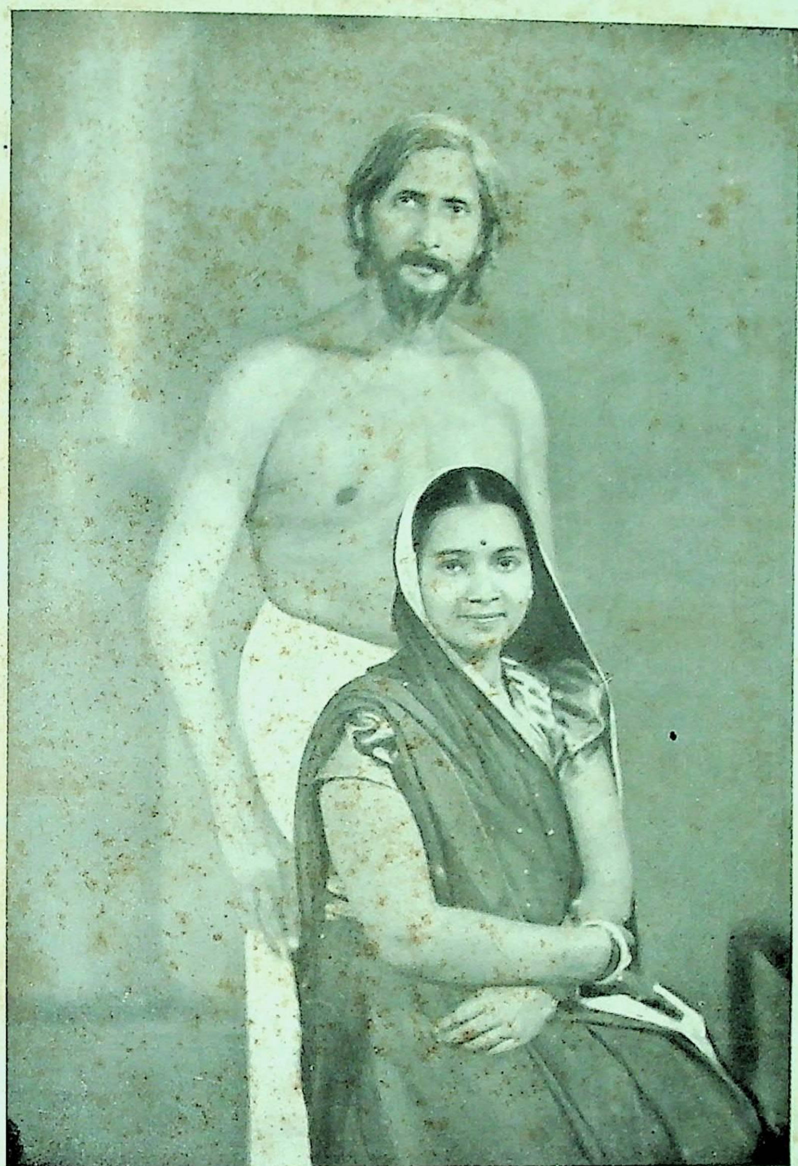
कवियत्रीके रूपमें इस महापुरुषके अनेक बार दर्शन किये हैं। एक घटनाको, जो उनके व्यक्तित्वको परिचायक है, उल्लेख करनेका लोभ मैं संवरण न कर सकूंगी। मुरादाबाद हिन्दी-परिषदके वार्षिकोत्सवके कवि-सम्मेलनका सभापतित्व करनेके लिए आपको आमन्त्रित किया गया था। कविता-पाठ मुझे भी करना था। सभापतिका विशाल शरीर और उसकी बड़ी आँखोंकी ओर देखकर मेरे छक्के छूट गये। पर पाठ करने पर उन्होंने स्नेह-संवरित प्रोत्साहनसे मुझमें मानों प्राण फूंक दिये और प्रथम पुरस्कार देते हुए मेरे लिए अच्छे भविष्यकी कामना की। तब मुझे ज्ञात हुआ कि उनके नेत्रोंकी तीव्र ज्योतिके कारण ही वे अपनी स्वर-लहरीसे जनतामें आह्लाद, शोक, स्नेह, माधुर्य, विलाप, अट्टहास और रौद्र-गर्जन सभीका प्रसाद कर सकते हैं। इन सब रसोंका उनकी आखोंमें समावेश है!

विशेष वेश-भूषा

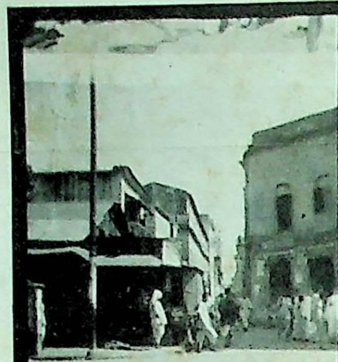
उनके विशाल कदपर भारी खादीके रेशमी और सूती सभी प्रकारके वस्त्र यथा-समय सुशोभित होते हैं। संख्या बहुत थोड़ी। केवल कुर्ता, धोती या लुंगी, अधिकांश भद्र-सी शैलीमें; कभी-कभी शुद्ध संयुक्त प्रान्तीय ढंग और मनः स्थितिके अनुरूप कभी शुद्ध बंगाली शैलीमें। वस्त्रोंकी न्यूनता उनके अपरिग्रही स्वभावकी ज्वलन्त द्योतक, सरलताकी सूचक और शक्तिकी सफल उद्‌घोषक है। गांधीजीकी तरह हिन्दुस्तानके भयंकर विरोधी मौसमोंको वह थोड़ेसे परिवर्तनके साथ सहन कर लेते हैं। उनकी कहानियों और उपन्यासोंमें वस्त्रोंका जो उल्लेख है, वह उनके निजी व्यक्तित्वकी झांकी लिए हुए है।

विनोदी-स्वभाव

हिन्दी जगतमें प्रायः वह उग्र स्वभावके माने जाते हैं, किन्तु यह उनका स्थाई स्वभाव नहीं है! यह स्वभाव तो वाह्यजगतके अप्रिय और कटु अनुभवोंकी प्रति-क्रियामात्र है। वास्तवमें वह विनोदको अधिक पसंद करते हैं। परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि समाजका विनोदी व्यक्ति साहित्यमें कठोर और नीरस तथा कसकने वाला व्यंगकार है। व्यंग उनके साहित्यमें जगह-जगह पर मिलेंगे, जहां वे निर्दयतासे प्रहार करते हैं। वहीं कवि-सम्मेलनोंमें वे अक्खड़ और गम्भीर नजर आते हैं। उनका अहम् ही उनका सब कुछ है। पर यह अहम् अद्वैत है; हिटलरका श्रेष्ठभाव नहीं। यह अद्वैत अहम्‌के उस सोपानका क्रमिक उत्थान है, जिसकी कुछ सीढ़ियां स्वामी रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द पा चुके हैं। उनका स्वभाव



श्रीमती चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा' के साथ



१



२





६



७





११



१२



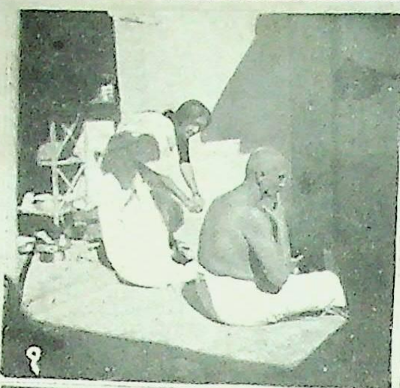
महाकवि के कलकत्ता-जीव

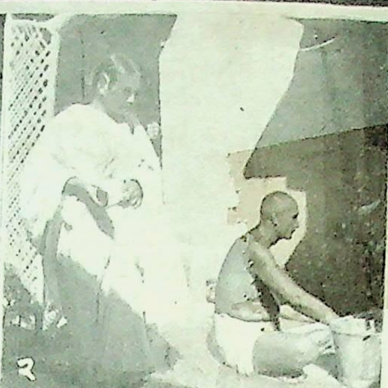
१—शंकर घोष लेन २—शंकर घोष लेनमें विद्यासागर कालेजका नवीन भाग। यहींपर मतवाला-कार्याल
पूरा दृश्य। ४—मछुआ बाजार स्ट्रीट स्थित हलवासिया-ट्रस्टका मकान, जिसमें निरालाजी सन् २९-३०
६ इस कमरेमें ही निरालाजी रहे। ७—कमरेके सामने भागमें ऊपर दोतल्ले पर महाकवि चौकी वि
सन २६ के साम्प्रदायिक दंगेके बाद श्री परमानन्दजी शर्माके साथ निरालाजी यहीं आकर रहे थे। ९—
नीचे नलका स्थान, जिसके रोचक संस्मरण इसी ग्रंथमें अन्यत्र पढ़ें। ११—इडन गार्डनका वह स्थान, जह
रहते थे। १३—इडन गार्डनका ध्वस्त पैगोडा, जिसकी चर्चा महाकविने 'अप्सरा' उपन्यासमें की है। १४
लाइब्रेरी, जहांपर निरालाजी प्रतिदिन साहित्यिक गोष्ठीके पूर्णाङ्क रूपमें विराजते थे।

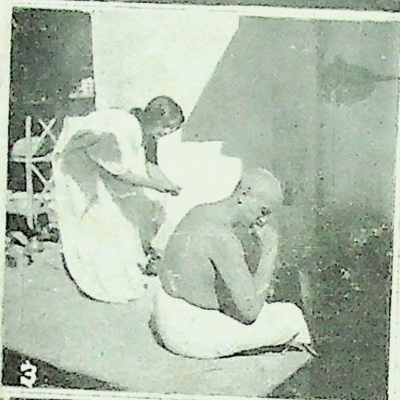


त्ता-जीवन से सम्बन्धित दृश्य

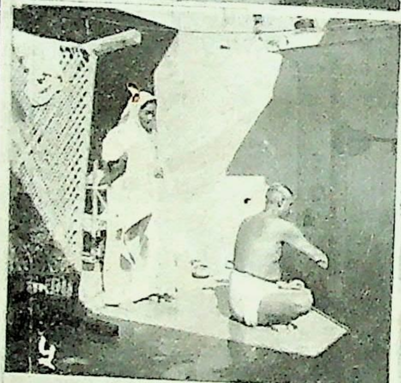
ाला-कार्यालय था, जिसकी नींवपर कालेजकी यह नई ईमारत सन ३३ के बाद चिनी गई। ३—कालेजका
् २९-३० में आकर रहे। ५—इस मकानका वह स्थान, जहां नल था। और निरालाजी स्नान करते थे।
न चौकी बिछाकर बैठते थे और नियमित रूपसे साहित्य-सृजन करते थे। ८—२ नं० बदरुद्दीन स्ट्रीट।
थे। ९—इस मकानका वह कमरा जो कविके निवाससे गौरवान्वित हुआ था। १०—इसी मकानमें
स्थान जहां महाकवि निराला नियमित घूमने आते थे। १२—पं० परमानन्दजी इस भ्रमणमें सदैव साथ
ी है। १४—ईडन गार्डनकी वह गेट, जहांसे महाकविका एक उपन्यास प्रारंभ होता है। १५—बड़ाबाजार



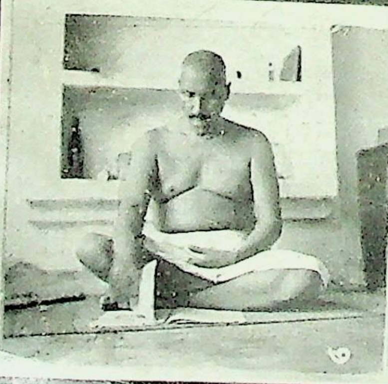


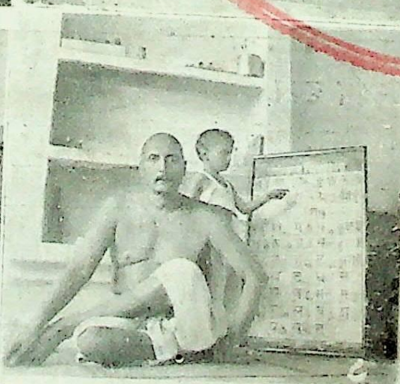












श्रीमती 'सुधा' जी के यहां